प्रकाशक—
मूलचन्द्र 'वत्सल' साहित्य शास्त्री,
मंत्री—
जैन साहित्य-सम्मेलन,
दमोह, सी० पी०

प्रथमावृत्ति
कार्तिक वीर निर्वाण संवत् २४६४

मुद्रक—
बालगोविन्द गुप्त,
प्रोप्राइटर,
शुभचिन्तक प्रेस, जबलपुर।

प्रस्तावना।

संसार में किसी प्रकार की प्रगति उत्पन्न करने के लिए साहित्य प्रमुख कारण होता है और किसी भी युग का निर्माण करने में साहित्य का अव्यक्त रूप से प्रधान हाथ रहता है। संसार में जब जब जैसा युग परिवर्तन हुआ है उसकी मूल में वैसी प्रगति का साहित्य अवश्य रहा है।

साहित्य वह उन्नतम कला है जो संसार की समस्त कलाओं में शिरोमणि स्थान रखती है। जीवन को किसी भी रूप में ढालने के लिए साहित्य एक महान सांचे का कार्य करता है। साहित्य के हथौड़े से ही जीवन सुडौल बनता है और साहित्य के द्वारा ही आत्मा की आवाज़ संसार के प्रत्येक कोने में पहुँचती है।

जैन साहित्य ने प्रत्येक युग में अपने पवित्र और विशाल अंगों द्वारा संसार को भारतीय गौरव के दर्शन कराये हैं। प्राणी मात्र को सुख शान्ति और कर्तव्य के पथ पर आकर्षित किया है और असंख्य प्राणियों को कल्याण पथ का पथिक बनाया है।

समयानुकूल साहित्य के निर्माण में जैन विद्वानों ने अपनी गौरवशालिनी प्रतिभा और विद्वता का पूर्ण परिचय दिया है।

संस्कृत साहित्य के निर्माण में तो जैनाचार्यों ने वैराग्य शान्ति, और तत्व निर्णय पर जो कुछ भी लिखा है वह अद्वितीय है किन्तु हिन्दी साहित्य के निर्माण में भी जैन विद्वान

किसी भी भारतीय कवि से पीछे नहीं रहे हैं उन्होंने काव्य द्वारा अपनी जिस पवित्र प्रतिभा का परिचय दिया है वह अत्यन्त गौरवमय है।

हिन्दी का जैन साहित्य अत्यन्त विशाल और महत्व-शाली है, भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो उसमें कुछ ऐसी विशेष-ताएँ हैं जो जैनेतर साहित्य में नहीं है।

हिन्दी की उत्पत्ति जिस प्राकृत या मागधी भाषा से मानी जाती है उसका सबसे अधिक परिचय जैन विद्वानों को रहा है। और यदि यह कहा जाय कि प्राकृत और मागधी शुरू से अब तक जैनों की ही संपत्ति रही है तो कुछ अत्युक्ति न होगी। प्राकृत के बाद और हिन्दी बनने के पहिले जो एक अपभ्रंश भाषा रह चुकी है उस पर भी जैनों का विशेष अधि-कार रहा है। इस भाषा के अभी कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और सब जैन विद्वानों के बनाए हुए हैं ऐसी दशा में स्पष्ट है कि हिन्दी की उत्पत्ति और क्रम विकास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हिन्दी का जैन साहित्य अत्यन्त उपयोगी है।

हिन्दी के जैन साहित्य ने अपने समय के इतिहास पर भी बहुत प्रकाश डाला है कविवर बनारसीदास जी का आत्म चरित अपने समय की अनेक ऐतिहासिक बातों से भरा हुआ है मुसलमानी राज्य की अँधा-धुन्धी का उसमें जीता जागता चित्र है अन्य कई ऐतिहासिक ग्रन्थ भी जैन कवियों के द्वारा लिखे गए हैं।

हिन्दी जैन साहित्य अत्यन्त महत्वशाली होने पर भी भारत के विद्वानों का लक्ष्य उस पर नहीं गया इसके कई प्रधान कारण हैं।

उसका प्रथम कारण तो जैनियों का अपने ग्रंथों का छिपाए रखना है। अन्य धर्मियों द्वारा जैन ग्रंथों को नष्ट कर देने के आतङ्क ने जैनों के हृदयों को अत्यन्त भयभीत बना दिया था और परिस्थिति के परिवर्तित हो जाने पर भी हृदयों में जमी हुई पूर्व आशंका से वे अपने ग्रन्थों को बाहर नहीं निकाल सके और न सर्व साधारण के सन्मुख पहुँचा सके।

जब से देश में छापे का प्रचार हुआ तब से जैन समाज को भय हुआ कि कहीं हमारे ग्रन्थ भी न छपने लगे और उन्होंने जी जान से उन्हें न छपने देने का प्रयत्न किया इधर कुछ नवीन विद्वानों पर नया प्रकाश पड़ा और उन्होंने जैन ग्रन्थों के छपाने का प्रयत्न किया जिसके फल स्वरूप जैन ग्रंथ छपने लगे ऐसी दशा में जब कि स्वयं जैनों को ही जैन साहित्य सुगमता से मिलने का उपाय नहीं था तब सर्व साधारण के निकट तो वह प्रकट ही कैसे हो सकता था।

दूसरा कारण जैन धर्म के प्रति सर्व साधारण का उपेक्षा भाव तथा विद्वेप है। अनेक विद्वान् भी नास्तिक और वेद विरोधी आदि समझकर जैन साहित्य के प्रति अरुचि या विरक्ति का भाव रखते हैं और अधिकांश विद्वानों को तो यह भी मालूम नहीं कि हिन्दी में जैन धर्म का साहित्य भी है और वह कुछ महत्व रखता है। ऐसी दशा में जैन साहित्य अप्रकट रहा और लोग उससे अनभिज्ञ रहे।

जैन समाज के विद्वानों की अरुचि या उपेक्षा दृष्टि भी हिन्दी जैन साहित्य के अप्रकट रहने में कारण है। उच्चश्रेणी के अँग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों की तो इस ओर रुचि ही नहीं है। उन्हें तो इस बात का विश्वास ही नहीं कि हिन्दी में भी उनके सोचने और विचारने की कोई चीज मिल सकती है। शेप रहे

संस्कृतज्ञ सज्जन सो उनकी दृष्टि में बेचारी हिन्दी भाषा की औकात ही क्या है वे अपनी संस्कृत की धुन में ही मस्त रहते हैं।

हिन्दी के जैन साहित्य की प्रकृति शांति रस है। जैन कवियों के प्रत्येक ग्रन्थ में इसी रस की प्रधानता है। उन्होंने साहित्य के उच्चतम लक्ष्य को स्थिर रक्खा है भारत के अन्य प्रतिशत निन्यानवे कवि केवल श्रृंगार की रचना करने में ही व्यस्त रहे हैं कविवर तुलसीदास, कबीरदास, नानक, भूषण आदि कुछ कवि ही ऐसे हुए हैं जिन्होंने भक्ति, अध्यात्म और वीरता के दर्शन कराए हैं इनके अतिरिक्त हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने श्रृंगार और विलास की मदिरा से ही अपने काव्य रस को पुष्ट किया है। इसके परिणाम स्वरूप भारत अपने कर्तव्यों और आदर्श चरित्रों को भूलने लगा और उनमें से शक्ति और ओज नष्ट होने लगा।

राजाओं तथा ज़मीदारों के आश्रित रहने वाले श्रृंगारी और खुशामदी कवियों ने उन्हें कामिनी कटाक्षों से बाहर नहीं निकलने दिया है। वास्तव में भारत के पतन में ऐसे विलासी कवियों ने अधिक सहायता पहुँचाई है और जनता के मनोबल नष्ट करने में उनकी श्रृंगारी कविता ने ज़हर का काम किया है।

साहित्य का प्रधान लक्ष्य जनता में सच्चरित्रता, संयम, कर्तव्यशीलता और वीरत्व की वृद्धि करना है काव्य के रस द्वारा उनके आत्म बल को पुष्ट बनाना और उन्हें पवित्र आदर्श की ओर ले जाना है। संसार को देवत्व और मुक्ति की ओर ले जाना ही काव्य का सर्व श्रेष्ठ गुण है। आनंद और विनोद तो उसका गौण साधन है।

जैन कवियों ने शृंगार और विलास रस से पुष्ट किए जाने वाले साहित्यक युग में भी उससे अपने को सर्वथा विमुख रक्खा है यह उनकी अपूर्व जितेन्द्रियता और सच्चरित्रता का परिचायक है ये केवल शृंगार काव्य से उदासीन ही नहीं थे किन्तु उसके कट्टर विरोधी रहे हैं।

कविवर बनारसीदास, भैया भगवतीदास और भूधरदासजी ने अपने काव्यों में शृंगाररस और शृंगारी कवियों की काफी निंदा की है।

जैन कवियों ने मानव कर्तव्य और आत्म निर्णय में ही अपनी काव्य कला को प्रदर्शित किया है। उनका लक्ष्य मानवों की चरम उन्नति की ओर ही रहा है। वे पवित्र लोकोद्धार के उद्देश्य को लेकर ही साहित्य संसार में अवतीर्ण हुए हैं। और उन्होंने उस दिशा में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। आत्म परिचय और मानव कर्तव्य के चित्रों को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। भक्ति वैराग्य, उपदेश, तत्व निरूपण विषयक जैन कवियों की कविताएं एक से एक बढ़कर हैं। वैराग्य और संसार के अनित्यता पर जैसी उत्तम रचनाएं जैन कवियों की हैं वैसी रचना करने में बहुत कम कवि समर्थ हुए है।

हिन्दी जैन साहित्य में चार प्रकार का साहित्य प्राप्त होता है।

१ तात्विक ग्रंथ, २ पद, भजन प्रार्थनाएँ, ३ पुराण चरित्र, ४ कथादि, पूजा पाठ।

जैनियों के प्रथम श्रेणी के कविवर बनारसीदास; भगवतीदास, भूधरदास, आदि कवियों ने प्रायः आध्यात्मिक तथा

आत्म निर्णय के गंभीर विषयों पर ही रचना की है। इन रचनाओं में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

कविवर द्यानतराय, दौलतराम, भागचन्द, बुधजन आदि कवि दूसरी श्रेणी के कवि हुए हैं। आपने अधिकतर पद, भजन और विनतियों की ही रचना की है। आपके पदों में आध्यात्मिकता, भक्ति और उप-देशों का गहरा रङ्ग है। भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से आपके पद महत्वशाली हैं।

इन के अतिरिक्त सहस्रों जैन कवियों ने पुराण, चरित्र, पूजा-पाठ पद, और भजनों की रचना की है जो साहित्यक दृष्टि से इतनी अधिक महत्वशाली नहीं है जितनी आदर्श और भक्ति के रूप में है।

उच्च श्रेणी के कवियों का क्षेत्र अध्यात्मिक रहा है। इस-लिए साधारण जनता उनके काव्य के महत्व तक नहीं पहुँच सकी। यदि इन कवियों ने चरित्र या कथा ग्रंथों की रचना की होती या भक्ति रस में बहे होते तो आज इनका साहित्य सारे संसार में उच्च मान पाता; किन्तु उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह अत्यन्त गौरव की वस्तु है। उसे भारतीय साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता है।

आज हमारा बहु-विस्तृत हिन्दी जैन काव्य भंडार छिन्न-भिन्न पड़ा हुआ है। यदि उसकी खोज की जाय तो उसमें से हमें ऐसे अनेक काव्य रत्नों की प्राप्ति हो सकती है जिससे हिन्दी साहित्य के इतिहास में नवीनता की वृद्धि हो सकती है।

उसी विशाल हिन्दी जैन साहित्य के दो महान कवियों का थोड़ा परिचय इस पुस्तक द्वारा कराया जा रहा है।

संसार को सुख शान्ति देने वाले पुण्य चरित दो तत्वज्ञ कवियों का यह पुण्यमय सन्देश है।

पाठकों को इसमें खोजने पर भी अश्लील शृंगार की गंध नहीं मिलेगी और न कामिनियों के विचित्र चित्रों का चित्रण ही इस में होगा। विलास वासनाओं को उद्दीप्त करनेवाली कल्पनाएँ और राग रङ्ग में डुबाने वाले अलंकारों का इसमें सर्वथा अभाव होगा। इसमें प्रत्येक स्थान पर संयम, सच्चरित्रता और आत्म-निर्णय का पवित्र तीर्थ प्राप्त होगा।

कविवर बनारसीदास जी का जीवन लिखने में हमे श्रीमान् पं० नाथूराम जी प्रेमी द्वारा संपादित बनारसी विलास से काफ़ी सहायता प्राप्त हुई है। कहीं कहीं तो हमें उनके उद्धरणों को ज्यों का त्यों रखना पड़ा है। इसके लिये हम प्रेमी जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

हमारी इच्छा कवियों की विस्तृत समालोचना और उनकी कविताओं की तुलनात्मक दृष्टि से विवेचना करने की थी। किन्तु पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने तथा समयाभाव के कारण ऐसा करने में हम समर्थ न हो सके। यदि अवसर मिला तो अगले संस्करण में इन दो विषयों की विस्तृत रूप से चर्चा की जायगी।

पाठकों से निवेदन है कि वे जैन कवियों के इस नन्दन निकुंज में एकबार अवश्य ही विचरण करें और उनके पवित्र काव्य रस का आस्वादन करें।

साहित्य-सेवक—
मूलचन्द्र 'वत्सल'
साहित्य शास्त्री

साहित्य रत्नालय,
दमोह
वीर निर्वाण २४६४

प्राचीन हिन्दी जैन कवि

कविवर बनारसीदास

कवि और उसका महत्व

" वे पुण्यात्मा रस सिद्ध कवीश्वर जयवन्त हैं जिनके यश रूपी शरीर को कभी जरा मरण भय नहीं लगता "

" वे महात्मा पुरुष धन्य हैं और उन्हीं का यश संसार में स्थिर है जिन्होंने उत्तम काव्यों की रचना की है "

संसार में कविता ही ऐसी वस्तु है जिससे संसार का कल्याण होता है और देश तथा समाज का गौरव स्थिर रहता है। काव्य प्राणियों के मन पर अपना जादू का सा असर डालता है। दुःख से व्याकुल हुए मानवों को धैर्य बँधाता है, कर्तव्य से गिरे हुए मनुष्य को कर्म का पाठ पढ़ाता है और निराश मनुष्य के मनमें आशा की तरंगे भर देता है काव्य जीवन का एक सुखद साथी है। आत्मा को ऊँचा उठानेवाला पवित्र मंत्र है और लोकोपकार का प्रधान साधन है।

कवि संसार की एक महान् विभूति है उसकी अमूल्य वैभव उसका सत्काव्य है। उसका सत्काव्य भंडार निरंतर अक्षय रहता है वह कभी नष्ट नहीं होता। कवि को अपनी कविता

द्वारा जो यश प्राप्त होता है वह राजा और महाराजाओं को अपना सारा वैभव लुटा देने पर भी नहीं मिलता।

यद्यपि हमने अपने महान् कवियों के यश वैभव को भुला दिया है किन्तु जब तक संसार में उनका काव्य रहेगा तब तक उनका यश अजर अमर रहेगा।

महा कवि बनारसीदास जी हिन्दी भाषा के प्रतिभाशाली कवि थे उनका कविता पर असाधारण अधिकार था उनकी काव्य कला हिन्दी के काव्य क्षेत्र में एक निराली ही छटा लिए हुए है। उनके प्रत्येक पद में उनकी निजी छाप है। उनके पास शब्दों का अमर भंडार था कविता के क्षेत्र में उन्होंने बड़ी स्वतंत्रता से कार्य किया है और ऐसे रूक्ष विषय पर काव्य की धारा बहाई है जिसे अन्य कवियों ने 'मरुस्थल' समझकर छोड़ दिया था।

उनका काव्य निर्मल चांदनी के समान प्राणियों के हृदय में अलौकिक शीतलता उत्पन्न कर, पाप विकारों को शांत करता हुआ अक्षय सुखामृत की सृष्टि करता है।

कविवर ने अपनी जीवन कथा स्वयं लिखी है आज से ३० वर्ष पूर्व वे अपने ५५ वर्ष के अनुभव का निचोड़ अपने लिखे हुए अर्थ कथानक में सुरक्षित रख गए हैं। यह जीवनचरित भारत के जीवन चरितों के इतिहास में एक अपूर्व कृति है।

यद्यपि और भी अनेकों कवियों ने अपने जीवनचरित्र लिखे हैं परन्तु उनमें अनेक असंभव तथा असत्य घटनाओं का ऐसा समावेश किया है कि उनपर विश्वास ही नहीं किया जा सकता और न उससे उनके जीवन और चरित्र का वास्तविक पता ही लगता है उनके जीवन तथा आचरण से सर्व

साधारण को जो शिक्षा प्राप्त होना चाहिए वह प्राप्त नहीं होती अस्तु वे विश्वस्त तथा पूर्ण चरित्र नहीं कहे जा सकते।

कवि शिरोमणि बनारसीदास जी ही एक ऐसे कवि थे जिन्होंने अपने जीवन की घटनाओं का यथार्थ वर्णन किया है और अपने गुण दोषों की समान रूप से समालोचना की है अपने पतन और उत्थान के चित्रण करने में उन्होंने पूर्ण सत्य से कार्य लिया है। उनकी जीवन घटनाओं तथा स्पष्ट समालोचना से प्रत्येक पढ़ने वाला व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर सकता है तथा अपने दोषों को दूर करने के लिए उसे शक्ति और साहस प्राप्त होता है।

अपने दोषों की स्पष्ट समालोचना करना साधारण व्यक्ति का कार्य नहीं है उसके लिए महान् व्यक्तित्व और प्रचंड आत्मबल की आवश्यक्ता है। कविवर ने अपने दोषों का स्पष्ट चित्रण करके अपने अलौकिक साहस का परिचय दिया है।

वंश परिचय

जिन पहिरी जिन जन्मपुरि–नाम मुद्रिका छाप।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसों आप॥

मध्य भारत में रोहतकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर उसके निकट ही बिहोली नाम का एक सुन्दर ग्राम था उसमें राजपूत क्षत्रिय रहते थे। एक समय एक जैन तपस्वी बिहार करते हुए वहाँ आए। उनका आचरण बड़ा पवित्र था। उनके उपदेश में एक विचित्र आकर्षण था। उनके अहिंसामई उदार जैन धर्म के उपदेश को सुनकर ग्राम के सभी राजपूतों ने जैन धर्म की दीक्षा धारण करली।

पहिरी माला मंत्र की, पायो कुल श्रीमाल ।
थाप्यो गोत विहोलिया, वीहोली रखपाल ॥

कविवर बनारसीदासजी का जन्म इसी प्रसिद्ध श्रीमालवंश में हुआ था ।

आपके पितामह श्री मूलदासजी हुमायूं बादशाह के उमराव के जागीरदार थे । वह नरवर नगर में शाही मोदी थे वहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । श्री मूलदासजी के खरगसेन नामक एक पुत्र था । बालक खरगसेन ग्यारह वर्ष का होने पाया था कि दुर्भाग्य से एकमात्र पुत्र और पत्नी को रोता छोड़कर मूलदासजी स्वर्गवास कर गए । बेचारे माता पुत्र दोनों निराधार हो गए—असमय में ही पति के इस वियोग से निराधार अबला का हृदय व्याकुल हो गया । इसी समय मुग़ल सरदार ने मूलदासजी की मृत्यु हो जाने पर उनकी सारी संपत्ति छीन ली । अब तो उस पर दोहरे दुःख का पहाड़ टूट पड़ा । उसका अब कोई सहारा नहीं रहा था उसका धैर्य नष्ट हो गया । अन्त में निराश्रित होकर वह अपने पिता के यहाँ जौनपुर आगई पिताने उसे आश्वासन देकर आदर सहित अपने यहाँ रक्खा ।

खरगसेनजी बालकपन से ही विचारशील, चतुर और वचन-कला में कुशल थे । वे १४ वर्ष की अल्प आयु से ही व्यापार की ओर अपना मन लगाने लगे । और अपनी कला कुशलता से आगरा आदि स्थानों में जाकर द्रव्य संग्रह करने लगे । धीरे २ अपने पुरुपार्थ से वे विपुल संपत्ति के अधिकारी हो गए । यही उदार चरित और परम साहसी ला० खरगसेनजी हमारे चरित नायक कविवर बनारसीदासजी के पिता थे ।

जन्म कथा

ला० खरगसेनजी का विवाह एक उच्च कुलीन कन्या से हुआ था। पति पत्नी में परस्पर बड़ा स्नेह था दोनों सुख पूर्वक अपना गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे।

उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। हाँ केवल एक बात का अभाव था अभी उनके कोई संतान नहीं हुई थी।

एक समय ला० खरगसेनजी पुत्र प्राप्ति की इच्छा से रोहतकपुरी की सती की यात्रा करने गए परंतु दुर्भाग्य से मार्ग में उनका सारा धन चोरों ने लूट लिया। वे बड़ी कठिनाई से वापिस लौटकर आए कविवर ने इसको बड़े अच्छे ढंग से वर्णन किया है।

गए हुते मांगन को पूत, यह फल दीनों सती अऊत,
प्रगट रूप देखें सब सोग, तऊ न मानें मूरख लोग।

तीन वर्ष की महान् आकांक्षा के बाद संवत् १६४३ में खरगसेनजी के यहाँ पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। माता-पिता का हृदय आनंद रस से सारावोर हो गया। पुत्र का नाम विक्रमाजीत रक्खा गया।

संवत् सोलह सौ तेंताल, माघ मास सित पक्ष रसाल
एकादशी वार रविनन्द, नखत रोहिणी वृष को चन्द
रोहिन त्रितिय चरन अनुसार, खरगसेन घर सुत अवतार
दीनों नाम विक्रमाजीत, गावहिं कामिन मंगल गीत।

वालक की आयु जिस समय ७ माह की थी उसी समय ला० खरगसेनजी श्रीपार्श्वनाथजी के दर्शन के लिए वनारस गए और पुत्र को भगवान् के चरण में डाल कर उन्होंने प्रार्थना की।

चिरंजीवि कीजे यह वाल, तुम शरणागति के रखपाल।
इस वालक पर कीजे दया, अव यह दास तुम्हारा भया।

उस समय मंदिर के पुजारी महोदय वहीं खड़े थे। उन्होंने कपट जाल रचना आरंभ किया। वे तुरंत ही मौनधारण करके पवन साधने का वहाना करके वैठ गए और कुछ समय वाद ढोंग खतम करके वोले—पार्श्वनाथजी के यक्ष ने प्रत्यक्ष होकर मुझसे यह कहा है, कि आपका यह वालक अवश्य ही दीर्घायु होगा। परंतु इसके लिए आपको इसका नाम परिवर्तन करना पड़ेगा।

जो प्रभु पार्श्वजन्म का गांव, सो दीजे वालक का नाव।
तो वालक चिरजीवी होय, यह कह लोप भयो सुरसोय।

खरगसेनजी पुजारी के कपट जाल में फँस गए और उन्होंने पुत्र का नाम वनारसीदास रख दिया। यही वालक वनारसीदासजी इस जीवन चरित्र के नायक कविवर वनारसीदास थे।

वनारसीदासजी अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे इसलिए उनका पालन-पोषण वड़े प्यार सहित हुआ। जव वे ७ वर्ष के हुए तव उनका विद्याध्ययन प्रारंभ हुआ। उस समय वहां पांडे रूपचन्द्जी नामक एक विद्वान् रहते थे। वे अध्यात्म के ज्ञाता और प्रसिद्ध कवि थे। आपके द्वारा रचा हुआ पंच कल्याणक पाठ वड़ा ही हृदयग्राही और सुन्दर काव्य है। इन्हीं के पास वालक वनारसीदासजी ने पढ़ना प्रारंभ किया।

बालक बनारसीदास की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। २-३ वर्ष में ही उन्होंने कई पुस्तकों का अध्ययन करके अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्होंने दश वर्ष की आयु तक ध्यान पूर्वक अध्ययन किया। उस समय मुगलों के प्रताप का सितारा चमक रहा था उनके अत्याचारों के भय से पीड़ित होकर गृहस्थों को अपने बालक बालिकाओं का विवाह छोटी ही आयु में करना पड़ता था इसलिए १० वर्ष की आयु में ही आपका विवाह कर दिया गया। विवाह के पश्चात् कुछ समय तक आपका अध्ययन बंद रहा। १४ वर्ष की आयु में आपने पं० देवीदासजी के निकट फिर से पढ़ना प्रारंभ किया इस समय उनका कार्य एकमात्र पढ़ना ही था। उन्होंने निम्न-लिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

पढ़ी नाम माला शत दोय, और अनेकारथ अवलोय
ज्योतिष अलंकार लघु कोक, खंड स्फुट शत चार श्लोक

युवावस्था और पतन

युवावस्था जीवन में एक ही बार आती है उसे पाकर संयमित रहना टेढ़ी खीर है। नदी के प्रबल पूर में पैरों को स्थिर रख सकना किसी विरले मनुष्य का ही कार्य है।

बनारसीदासजी अब जवान हो गए थे वे यौवन के वेग को नहीं सँभाल सके। उनके पास संपत्ति थी। वे स्वतंत्र थे और अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। यह सभी सामग्री उनके बिगड़ने के लिए पर्याप्त थी। बस क्या था वे मदोन्मत्त हो गए। उनके सिर पर इश्क बाजी का नशा चढ़ गया।

तजि कुल कान लोक की लाज।
भयो बनारसि आसिख बाज।

जिस समय बनारसीदास अनंग रंग में मस्त थे उसी समय जौनपुर में भानुचन्द्र यति नामक एक महात्मा आए थे वे श्वेतांवर संप्रदाय के प्रसिद्ध साधु थे। सदाचारी और विद्वान् थे उनकी ख्याति सुनकर कवि बनारसीदासजी उनके दर्शन को गए। यति महाराज की सौम्य मुद्रा देख और उनका पवित्र उपदेश सुनकर कविवर का हृदय भक्ति से भर गया वे नित्य-प्रति उनके पास जाने लगे। धीरे-धीरे कविवर का उनसे इतना स्नेह बढ़ गया कि वे दिन भर उन्हीं की सेवा में रहने लगे। उनके पास रहकर उन्होंने पंच सधि, सामायिक, प्रतिक्रमण, छन्द, शास्त्र, श्रुतबोध, कोष और स्फुट श्लोक आदि विषय कंठस्थ कर लिए और सदाचार की प्रतिज्ञा भी लेली। इतना सब कुछ होने पर भी उनके काम का नशा कम न हुआ उनकी यही हालत रही—

कबहूं आइ शब्द उर धरै,
कबहूं जाइ आसिखी करै,
पोथी एक बनाई नई,
मित हजार दोहा, चोपाई,
तामें नवरस रचना लिखी,
पै विशेष बरनन आसिखी,

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रस मांहि।
खान पान की सुधि नहीं रोजगार कछु नाहिं॥

इस समय कविवर की जीवन नौका कविता और विलासिता के भ्रमर में पड़ी हुई थी। जिसका झोका तेज होता था वे उसी ओर बह जाते थे।

कविवर को कविता करने की रुचि १४ वर्ष से ही हो गई थी। इस समय वे नवरस पूरित सुन्दर कविता करने लगे थे। इस समय आपने लगभग एक हजार पद्यों की रचना की जो नवरसों से युक्त होने पर अधिकांशतः श्रृंगार रस से ही परिपूर्ण थी। श्रृंगार वर्णन में ही आप उस समय अपनी लेखनी को सार्थक किया करते थे।

इस समय आपके अनेक मित्र बन गए थे। स्वार्थी मित्रों को और क्या चाहिए था। रात दिन अखाड़ा जुड़ा रहता। कविता का दौर चलता, प्रशंसा के पुल बँधते और हँसी का फव्वारा छूटता। बस आपका यही नित्यप्रति का कार्य था।

माता पिता समझाते थे, गुरुजन उपदेश देते थे किन्तु कमलपत्र पर पड़े हुए जल विन्दु के समान उनके मन पर उपदेश का जल नहीं ठहरता था। यौवन के वेग में बढ़ने वाले विलासिता के झरने का रुकना कठिन हो गया था। वे सब उपदेशों को एक कान से सुनते और दूसरे कान से निकाल देते। अन्त में विलासिता में वे इतने मस्त हो गए कि पढ़ना लिखना और घर का कार्य करना भी उन्होंने छोड़ दिया।

जहाँ कामदेव का राज्य होता है वहाँ विचार शक्ति नहीं रहती, सद्बुद्धि भाग जाती है और अनेक अनर्थ अपना अड्डा जमा लेते हैं। काम ग्रस्त मनुष्य वेषधारी साधु, फकीरों और यंत्र-मंत्रों द्वारा धन लाभ और कार्य सिद्धि की अधिक इच्छा रखते

हैं। विलासी बनारसीदासजी भी ऐसे ही मंत्रवादी साधुओं के भक्त हो गए।

एक समय जौनपुर में एक सन्यासी देवता आए। ये महात्मा अपने को चांदी का सोना बना देने में सिद्ध-हस्त बतलाकर अनेक भोले लोगों पर अपना जादू चलाने लगे। कविवर बनारसीदासजी इनके फंदे में फँस गए, लगे सन्यासीजी की सेवा करने। सन्यासीजी ने इन्हें अनेक प्रकार की प्रलोभनाओं के जाल में फँसाना प्रारंभ किया और चांदी का सोना बनाने वाले मंत्र बतलाने का माया जाल बिछाकर खूब द्रव्य ठगना प्रारम्भ किया। अंत में हजारों रुपया खर्च करके श्री बनारसीदासजी ने सन्यासीजी से वह मंत्र सीख लिया और उसका जप करना प्रारंभ किया जिस समय बनारसीदास जप करने में लगे हुए थे उसी समय मौका पाकर सन्यासीजी कहीं भाग गये। मंत्र जपते जपते एक वर्ष में पूर्ण हो गया। आज बनारसीदासजी के हर्ष का ठिकाना न था वे अपने पास कुबेर की संपत्ति आने की कल्पना में मग्न हो रहे थे लेकिन उन्हें एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिली। तब कहीं आपकी आँखें खुलीं और आपको इन बनावटी साधुओं की धूर्तता का पता लगा। अब वे ऐसे मंत्रवादी चमत्कारी साधु-सन्तों से सदा ही दूर रहने लगे। आप वेषधारी महन्तों से सदैव सचेत रहते थे किन्तु एक बार फिर एक जोगी महाराज का प्रभाव आप पर पड़ ही गया। यह जोगी महाराज अपने को सदा शिव का भक्त कहते थे इन्होंने कविवर को एक शंख तथा कुछ पूजन के उपकरण देकर कहा—यह सदाशिव की मूर्ति है इसकी पूजा से महा पापी भी शीघ्र ही शिव को प्राप्त करता है तेरे सारे पाप इसकी पूजा के प्रभाव से नष्ट हो जायँगे और तू महा मंगल को प्राप्त होगा।

बस क्या था आप उसके प्रभाव में आ गए और उसका द्रव्य द्वारा खूब सत्कार करके सदा शिव की पूजा करने लगे। शिव शिव का एक सौ आठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जप में आपकी इतनी श्रद्धा हो गई कि उसके बिना किए आपका भोजन भी नहीं होता था। कविवर ने अपने जीवनचरित्र में उस समय के सदाशिव की पूजन को उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकार में इस प्रकार कहा है—

शंख रूप शिव देव, महा शंख बानारसी।
दोऊ मिले अबेब, साहिब सेवक एक से॥

परिवर्तन

संवत् १६६२ के कार्तिक मास में बादशाह अकबर की आगरा में मृत्यु होगई। कविवर बनारसीदासजी अकबर की धर्म रक्षा तथा हिन्दू प्रेम पर अत्यंत मुग्ध थे। उनका हृदय विदीर्ण हो गया वे उस समय मकान के जीने पर बैठे हुए थे मृत्यु संवाद सुनते ही उनका कोमल हृदय विदीर्ण हो गया वे मूर्छित होकर नीचे गिर पड़े उनका सिर फट गया और रक्त की धारा बहने लगी। माता पिता दौड़े आए। उपचार किया वे सचेत हुए और कुछ दिनों के उपचार के पश्चात् अच्छे हो गए।

बनारसीदासजी अब तक सदाशिव का पूजन नित्यप्रति किया करते थे एक दिन एकान्त में बैठे बैठे वे सोचने लगे।

जब मैं गिरयो परयो मुरझाय।
तब शिव कछु नहिं करी सहाय।

इस विचार ने उनके जीवन में काया पलट कर दिया शिव पूजा पर से उनका विश्वास हट गया और सदाशिव का पूजन सदा के लिए समाप्त हो गया।

उनका हृदय ज्ञान के प्रकाश में विचरण करने लगा वे कोमल शान्त रस के स्रोत में डूबने लगे। सद्विचार की लहरें क्षण-क्षण में उनके मानस सरोवर में उमड़ने लगीं उनका मन विलास के वंधन से निकलने का प्रयत्न करने लगा। अंत में सद्विचारों की पूर्ण विजय हुई। मदन देव का शाषन समाप्त होगया। अब कविवर वनारसीदासजी के पास शृंगार को स्थान नहीं था।

संध्या का सुहावना समय था। वनारसीदासजी अपनी मित्र-मंडली के साथ गोमती नदी के पुल पर वैठे हुए वायु सेवन कर रहे थे, सरिता की तरल तरङ्गों के साथ मन की दौड़ की तुलना करते हुए वे विचारों में मग्न हो रहे थे। वगल में एक सुन्दर पुस्तक थी। मित्रगण चुपचाप नदी की शोभा देख रहे थे। कविवर अनायास ही अपने मनही मन में वड़-वड़ाने लगे 'जो एक वार भी मिथ्या बोलता है वह दुर्गति का पात्र वनता है ऐसा महात्माओं का कथन है। ओह! मैंने तो झूठ का एक पुराण ही वना डाला स्त्रियों के कपोल कल्पित नख-शिख तथा हाव-भाव विभ्रम विलासों की मिथ्या रचना कर डाली मेरी क्या दशा होगी। मैंने यह कार्य अच्छा नहीं किया। मैं तो अब पाप का भागी हो ही चुका हूं परन्तु इसे पढ़कर लोग पाप के भागी क्यों हों'। इन विचारों ने कवि के हृदय को डगमगा दिया वे आगे और कुछ न विचार सके। किसी की सम्मति की प्रतीक्षा किए बिना ही उन्होंने गोमती के उस अथाह और भीषण प्रवाद में रसिक जनों का जीवन स्वरूप, स्वनिर्मित शृंगार इस पूरित महाग्रंथ को डाल

दिया। ग्रंथ के पत्र अलग २ होकर बहने लगे। मित्रगण हाय २ करने लगे परन्तु अब क्या होता था गोमती की गोद में से पुस्तक छीन लेने का किसका साहस था। मन मारकर सब अपने २ घर चले आए। कविवर भी अपने घर आए। आज उनके हृदय में एक अद्भुत प्रसन्नता थी मानो उनके मन पर से एक बड़ा बोझ उतर गया था।

अपनी अमूल्य निधि को इस प्रकार एक दम ही तुच्छ समझकर फेंक देना और तत्काल ही विरक्त हो जाना रसिक शिरोमणि बनारसीदासजी का साधारण त्याग नहीं था यह उनकी उच्च आत्मा की विशेप ध्वनि थी, उनकी महानता की यह थोड़ी सी झाँकी थी। इसके अन्दर आत्म त्याग का महान परिचय था।

इस घटना से उनकी अवस्था में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया अब उन्होंने एक नवीन दिशा की ओर कदम बढ़ाया।

तिस दिन सों बानारसी, करी धर्म की चाह।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुलकी राह।

कविवर का जीवन अब नवीन सांचे में ही ढल गया था। मित्र मंडली के साथ गली कूचों में भ्रमण करने वाले बनारसी अब विशेष भक्ति और श्रद्धा युक्त होकर अष्ट द्रव्य से भगवान् की पूजा करने लगे थे। जिन दर्शन के बिना अब आप भोजन पान ग्रहण नहीं करते थे। व्रत, नियम, संयम स्वाध्याय में मग्न रहने लगे थे और सच्चे हृदय से सभी क्रियाएं करते थे।

तब अपजसी बनारसी,
अब जस भयो विख्यात।

शुष्क अध्यात्मवाद ।

आगरे में उस समय अर्थमल्लजी नामक एक सज्जन रहते थे आप अध्यात्म रस के बड़े रसिक थे। वे कविवर के निकट आकर उनकी कविताओं को सुना करते थे कविवर की विलक्षण काव्य शक्ति देखकर वे बड़े प्रसन्न होते थे। वे चाहते थे कि कविवर अधात्मिक विषय की ओर आएं और अध्यात्म विषय पर कविता करें। एक समय उन्होंने कविवर के लिए नाटक समयसार नामक ग्रंथ अध्ययन के लिए दिया। कविवर की बुद्धि इस परम अध्यात्मिक ग्रंथ को पढ़कर दंग रह गई उन्होंने उस ग्रंथ का कई बार अध्ययन किया परंतु वे उसके वास्तविक रहस्य को प्राप्त नहीं कर सके वे शुष्क आध्यात्मवाद में गोते लगाने लगे। वाह्य क्रियाओं को उन्होंने बिलकुल तिलांजलि देदी। जप, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि सभी कार्य वे एक दम छोड़ बैठे। वे इन सभी क्रियाओं को केवल मात्र ढोंग समझने लगे उनके विचार यहाँ तक परिवर्तित हुए कि वे भगवान को चढ़ाया हुआ नैवेद्य भी खाने लगे। इस समय उनके तीन साथी और भी हो गए। वे भी कविवर के समान ही आचरण करने लगे। यह चारों एकान्त में बैठकर केवल अध्यात्म की चर्चा करने में ही अपना कालक्षेप करते। व्यवहार धर्म, वर्ण जाति आदि की खिल्लियां उड़ाना ही इनकी चर्चा का मुख्य ध्येय था। इनकी उस समय यही दशा थी।

नगन होहिं चारों जनें, फिरहिं कोठरी माँहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नांहि।

चारों नग्न होकर कोठरी में फिरते और अपने आपको मुनि सिद्ध करते इस अवस्था में आप कई मास तक रहे एक समय सौभाग्य से आपको पांडे रूपचंदजी का सत्संग प्राप्त हो गया उनके सहयोग से आपने गोमट्टसार आदि सिद्धांत के उच्च ग्रंथों का अध्ययन किया और ज्ञान तथा क्रिया का विधान भली भाँति समझा। इसके पढ़ने से उनके हृदय कपाट खुल गए। और आचरणों तथा ज्ञान दोनों की महत्ता मानने लगे। सद् आचरणों और धार्मिक क्रियाओं के लिए उनके हृदय में पुनः स्थान प्राप्त हो गया आध्यात्मिकता के साथ ही वे क्रियाओं का भी पालन करने लगे और अपनी पिछली अवस्थाओं पर उन्होंने खेद प्रगट किया।

व्यापार कार्य

हृदय परिवर्तन होते ही उनका ध्यान उद्योग और आर्थिक उन्नति की ओर गया। उन्होंने व्यापार की ओर ध्यान आकर्षित किया वे व्यापार कार्य में कुशल नहीं थे। पिता जी ने उन्हें व्यापार संबंधी कुछ शिक्षाएं देकर दो हीरे की अँगूठिएँ, चौबीस माणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, बीस पन्ना, चार गांठ फुटकर चुन्नी, २ मन घी, दो कुप्पे तेल, दो सौ रुपये का कपड़ा तथा कुछ नकद रुपये देकर व्यापार के लिए आगरा जाने की आज्ञा दी।

बनारसीदास जी यह सब सामान लेकर आगरा पहुँचे। आगरा आकर उन्होंने घी, तेल और कपड़ा बेचा परन्तु उसमें उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ उसकी बेच का समस्त रुपया हुंडी द्वारा घर भेजकर उन्होंने जवाहरात बेचने का उद्योग किया।

उन्होंने कई स्थानों पर जाकर जवाहरात दिखलाए परन्तु कहीं पर भी उनकी ठीक व्यवस्था नहीं हो सकी अन्त में वे किसी भी प्रकार माल को बेचने के लिए अपने स्थान से निश्चित विचार करके चल दिये। उन्होंने एक स्थान पर कुछ जवाहरात बाँध लिये थे; जब वे उन्हें दिखाने बैठे तब उन्हें मालूम हुआ कि वे कहीं खिसक कर गिर गए हैं। उन्होंने एक कपड़े में कुछ माणिक बांध-कर रहने के स्थान पर कहीं रख दिये थे; उन्हें कपड़े समेत चूहे न मालूम कहाँ ले गए। एक जड़ाऊ मुद्रिका उनकी असावधानी से न मालूम कहाँ गिर गई। इन सभी आपत्तियों से उनका हृदय कंपित हो गया। उन्होंने दो जड़ाऊ पहुँची एक सेठ जी को बेची थी वे उसका रुपया लेने गए तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उस सेठ का आज दिवाला निकल गया है। इससे उनके हृदय पर बड़ी कठोर ठेस लगी वे हताश और कर्तव्य-विमूढ़ हो गए। प्रथम उद्योग में ही अचानक अनेक आपत्तियों के आक्रमण से वे अपने धैर्य को स्थिर नहीं रख सके। उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और स्वास्थ्य लाभ की इच्छा से वे कुछ समय के लिए वहीं विश्राम करने लगे।

सब कुछ खो जाने के पश्चात् ७ माह तक वे आगरे ही रहे। इस समय उन्हें केवल मात्र व्यापार की ही चिन्ता थी। आगरे में उस समय एक अमरसी नामक वैश्य व्यापारी रहते थे उन्होंने बनारसीदास जी के उदार चरित्र और सच्चरित्रता को देखकर ५००) देकर अपने पुत्र के साथ साझे में व्यापार करा दिया। दोनों साझी माणिक, मणि मोती आदि खरीदने और बेचने लगे। इस प्रकार उन्होंने दो वर्ष तक कठिन परिश्रम से कार्य किया। किन्तु अन्त में हिसाब करने पर २००) रुपये का लाभ निकला और इतना ही उनके खाने पीने के खर्च में समाप्त हो गया।

निकसी थोथी सागर मथा,
भई हींग वाले की कथा;
लेखा किया रूख तल बैठि,
पूँजी गई लाभ में पैठि।

इस कार्य में कुछ लाभ हुआ न देखकर उन्होंने इसे छोड़ दिया और एक नरोत्तमदास नामक व्यक्ति के साथ खैराबादी कपड़े का व्यापार किया उसमें आपने काफ़ी उद्योग किया; परन्तु अन्त में हिसाब किया तो मूल और व्याज देने के बाद ४) घाटे में रहे। किन्तु उद्योगशील बनारसीदास जी व्यापार से घबड़ाए नहीं कुछ दिन के बाद ही दोनों मित्रों ने पटना आदि स्थानों पर व्यापार के लिए गमन किया और छः सात माह तक पूर्ण परिश्रम के साथ उद्योग किया किन्तु उसमें भी आपको कुछ भी लाभ नहीं हुआ तब अन्त में उन्होंने साझे का व्यापार छोड़कर प्रथक् दूकान की। छः वर्ष की कठिनाइयों को सहन करने और घाटा पर घाटा सहने के पश्चात् उनके भाग्य का सितारा चमका। व्यापार में उन्हें काफी लाभ होने लगा और कुछ समय में ही उन्होंने अच्छा द्रव्य संचय कर लिया अब वे आनन्द सहित आगरे में ही रहने लगे।

व्यापारिक कठिनाइएँ

उस समय रेल आदि के न होने से व्यापार कार्य गाड़ियों तथा पैदल यात्रा द्वारा ही होता था। पुलिस तथा राज्य का उचित प्रबंध न होने के कारण व्यापारियों को अनेक कठिनाइयों का साम्हना

करना पड़ता था। कविवर को भी व्यापार के समय अनेक यातनाएं सहना पड़ी थीं।

एक बार आप जौनपुर से गाड़ियों में माल लेकर आगरा जा रहे थे अनायास ही मार्ग में भीषण जल की वर्षा होने लगी। समस्त मार्ग पानी और कीचण से भर गया, रात्रि का समय हो गया था मीलों तक कहीं ठहरने को स्थान नहीं था। बड़ी कठिनता से आगे चलने पर एक झोपड़ी दिखलाई दी गाड़ियों को एक स्थान पर छोड़कर उसमें स्थान पाने की इच्छा से वे झोपड़ी के निकट गए। झोपड़ी की दयालु महिलाने इन्हें उसमें खड़े हो लेने का आश्वासन दिया किन्तु उसका निष्ठुर पति वाँस लेकर दौड़ा और इन्हें कोठरी के वाहिर निकाल दिया। कविवर कहते हैं।

फिरत फिरत फावा भये, वैठन कहै न कोय।
तलैं कीच सों पग भरे, ऊपर वरसत तोय॥
अंधकार रजनी विषैं, हिम रितु अगहन मास।
नारि एक वैठन कह्यो, पुरुष उठ्यो लै वांस॥

अंत में वर्षा में भीगते फिरते एक चौकीदार की झोपड़ी के निकट पहुँचे उससे अपनी विपत्ति की कहानी कह सुनाई। चौकीदार का हृदय पिघल गया और उसने रात्रिभर रहने के लिए ज़रा-सा स्थान वतला दिया। चौकी में जगह इतनी थी कि सोना तो दूर रहा चार आदमी वैठ भी नहीं सकते थे। इन्होंने अपने वैठने का प्रबंध किया ही था कि इसी समय अचानक घोड़े पर सवार हुआ एक सैनिक आ पहुँचा। उसने डाँट डपटकर इन सब को झोपड़ी से अलग कर दिया। वेचारे उस घनघोर वरसात में वाहिर निकलने को ही थे कि इतने में उस निष्ठुर सैनिक को दया

आ गई उसने चार पाई के नीचे पड़ रहने का हुक्म दिया। तब टाट पर नीचे वेचारे वनारसीदास और उनके साथी सोए और उसके ऊपर चारपाई पर नवावजादे सैनिक पैर फैलाकर सोए।

एक समय आप अपने साथियों के साथ व्यापार के लिए जा रहे थे। अचानक जंगल में भूल गए और डाकुओं के हाथ में पड़ गए। डाकुओं का उस समय बड़ा आतंक था वे व्यापारियों के साथ वड़ी नृशंसता का व्यापार करते थे। कविवर को इस विपत्ति के समय एक युक्ति सूझ गई उन्होंने उस समय बड़े धैर्य पूर्वक बुद्धिमानी से कार्य किया। डाकुओं के चौधरी के निकट जाकर उन्होंने २–३ श्लोक बोलकर उसे आशीर्वाद दिया। डाकुओं ने इन्हें ब्राह्मण समझकर बड़े सम्मान के साथ रक्खा। रात्रि में इन्होंने सूत के जनेऊ बटकर पहन लिए और मिट्टी के त्रिपुंड लगाकर अपना ब्राह्मण वेप वना लिया। सवेरा होते ही डाकुओं ने इनको प्रणाम किया और दान-दत्तिणा देकर वड़े आदर से इन्हें विदा किया, ये आशीर्वाद देते हुए ग्राम को रवाना हुए। एक डाकू इनके साथ ग्राम तक गया। इस प्रकार युक्ति के बल से ये लुटने से वच गए।

ऐसी २ अनेक आपत्तियों के बीच में से आपको अनेक वार गुजरना पड़ा था किन्तु आपने आपत्तियों का बड़े साहस से साम्हना किया और अपनी दृढ़ता का पूर्ण परिचय दिया।

पत्नी सुख।

कविवर का प्रथम विवाह १० वर्ष की अल्प आयु में खैराबाद निवासी सेठ कल्याणमलजी की सौभाग्यवती कन्या के साथ हुआ था। आपकी पत्नी बड़ी सुशीला, संतोषी और

पति भक्ति थी। पति की साधारण स्थिति होने पर आभूषण आदि के अभाव में ही केवलमात्र पति को सुखी देखकर ही उन्हें सुख था। वह सच्ची अर्द्धांगिनी थी। पति को दुखित देखकर उनका हृदय दुःख से कातर हो उठता था पति के कष्ट को शक्ति भर नष्ट करना वे अपना कर्तव्य समझती थीं और जब तक वे उनकी चिंता और दुख को दूर हुआ नहीं देखतीं तब तक उन्हें संतोष नहीं होता था।

एक समय अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए अनेक प्रकार के कष्टों को सहते हुए भी जब कविवर को कुछ भी लाभ नहीं हुआ यहाँ तक कि पिता की दी हुई सारी संपति वे गँवा बैठे तब घूमते हुए वे अपने श्वसुरालय की ओर निकल पड़े। श्वसुर ने देखते ही उनका प्रेम और सम्मान सहित स्वागत किया।

रात्रि का समय हुआ पत्नी ने अधिक समय के बिछुड़े हुए पति को प्राप्त किया। अधिक समय के वियोग के पश्चात् का दंपति का यह मिलन अत्यंत आनंदप्रद था। कुछ समय तक तो एक दूसरे को देखकर युगल दंपति चित्र लिखित से रह गए। दोनों में से किसी का भी साहस आगे बढ़ने का न हुआ। अंत में पत्नी ने पति के चरणों पर गिरकर मूक स्वर से उनका आह्वानन किया। पति का हृदय अविरल प्रेम धारा से परिपूर्ण हो गया। पत्नी को हृदय से लगाकर प्रेम दृष्टि से अवलोकन कर उसे संतोषित किया। इसके पश्चात् दोनों का परस्पर वार्तालाप हुआ। इतने समय में बीती हुई सुख दुख की अनेक बातें हुईं। कविवर अपनी प्रियतमा पर अपनी व्यापारिक असफलताएं प्रगट नहीं होने देना चाहते थे अस्तु वे लंबी चौड़ी बातें बनाकर अपनी व्यापार संबंधी सफलता का वर्णन करने लगे किन्तु

उनकी भावभंगी और मुख मुद्रा ने उनका सहयोग नहीं दिया अंत में असली बात प्रकट हो गई बनावट का परदा स्थिर नहीं रह सका कविवर ने सरल भाव से अपने कष्ट और असफलता की सारी कथा सुनादी। पतिव्रता पत्नी ने उन्हें धैर्य देते हुए कहा।

समय पाय के दुख भयो, समय पाय सुख होय।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुण्य फल होय।

पत्नी के इस प्रेम भरे अश्वासन से कविवर को बड़ी संतुष्टि हुई वे अपने संपूर्ण कष्टों को भूल गए इसी समय पत्नी ने पति के करकमल में २०) लाकर अपनी तुच्छ भेंट समर्पित करते हुए बड़ी नम्रता से कहा।

यह मैं जोरि धरे थे दाम।
आये आज तुम्हारे काम॥
साहिब चिन्त न कीजे कोय।
'पुरुष जियै तो सब कुछ होय'॥

पत्नी के मुंह से निकला हुआ अंतिम पद कितना हृदय-ग्राही है ऐसी सुशीला पत्नी किसी विरले ही भाग्यवान को प्राप्त होती है। उस वन्दनीय स्त्री की तृप्ति इतने में ही नहीं हुई। उसने दूसरे दिन एकान्त पाकर अपनी माता की गोद में सिर रख दिया और फूट फूटकर रोने लगी। वह पति की आर्थिक अवस्था के शोक से व्यथित अपने हृदय को माता के साम्हने रखते हुए बोली—

जननी! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है। यदि तू सहायता न करेगी तो प्राणपति न मालूम क्या कर बैठेंगे। वे इतने

लज्जाशील हैं कि अपने विषय में किसी प्रकार की याचना करना तो दूर रहा परन्तु वे एक शब्द भी नहीं कहेंगे। इस समय उनका मन अस्थिर हो रहा है यदि तू कुछ आर्थिक सहायता दे तो वे कुछ व्यवसाय करने लगें। धन्य पतिव्रते! पुत्री के हृदय के दुःख का अनुभव कर माता ने आश्वासन देते हुए कहा:— बेटी! निराश मत हो, मेरे पास ये २००) हैं ये मैं तुझे देती हूँ इससे वे आगरे जाकर व्यापार कर सकेंगे। धन्य जननी!

रात्रि को दंपति का पुनः समागम हुआ पतिपरायणा साध्वी ने कोकिल कंठ से प्रेम भरे शब्दों में पति से प्रार्थना की। 'नाथ! आप एक बार फिर उद्योग कीजिए अबकी बार आप अवश्य ही सफल होंगे। मैं दो सौ रुपया और भी आपको देती हूँ आप इन्हें ले जाइए और व्यापार में लगाइए!' कविवर अपनी पुण्यवती पत्नी की इस अपूर्व भक्ति को देखकर विमुग्ध हो गए। उनसे कुछ भी नहीं कहा गया।

किन्तु अपनी इस पति प्राणा पत्नी के सुख को वे अधिक समय तक नहीं देख सके। एक समय जब वे व्यापार कार्य में विदेश की यात्रा कर रहे थे उसी समय एक व्यक्ति ने उनकी इस सुशीला पत्नी के निधन का संवाद उन्हें सुनाया। इस बज्राघात से उनके शोक का ठिकाना न रहा झरने की तरह उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। अपनी सुयोग्य सहधर्मिणी के अलौकिक गुणों और भक्ति भावों के स्मरण से उनके हृदय की विचित्र ही दशा हो गई। उनका हृदय फटने लगा वे विलाप करते हुए कह उठे। हाय! जिसने मुझे संतोपित करने के लिए अपने जीवन की किंचित् भी चिन्ता नहीं की अन्त समय में उसका दर्शन भी न कर सका। उससे प्रेम भरी एक बात भी न कर

सका उसके पिपासित नेत्रों को मेरे ये लालायित नेत्र न देख सके नर्ती साध्वी में तुम्हारी भक्ति का कुछ भी बदला न दे सका मुझे क्षमा करना।

प्रथम पत्नी के निधन के पश्चात कविवर के और भी दो विवाह हुए परन्तु वे अपनी इस उदार-हृदया पत्नी के गुणों को विस्मरण नहीं कर सके।

मित्र लाभ

यों तो सरलता और उदारता के कारण कविवर को कभी मित्रों के स्नेह की कमी नहीं रही परन्तु संपूर्ण मित्र मंडली में आपकी श्री नरोत्तमदास जी से अत्यंत गाढ़ी मित्रता थी। एक क्षण का वियोग भी एक दूसरे को असह्य हो उठता था। कोई सा भी कार्य परस्पर की सम्मति के बिना नहीं होता था। कष्ट में धैर्य बंधाने वाला, व्यापार में पूर्ण सहयोग देने वाला और प्रत्येक प्रकार की सहायता देने वाला यह आपका एक दूसरा ही हृदय था। अपने इस मित्र के विषय में कविवर ने लिखा है।

नवपद ध्यान, गुणवान भगवंत जी को।
करत सुजान दिन ज्ञान जगि मानिये॥
रोम रोम अभिराम, धर्मलीन आठों याम।
रूप धन-धाम, काम मूरति बखानिये॥
तन को न अभिमान, सात खेत देत दान।
महिमा न जाके जस को वितान तानिये॥
महिमा निधान प्रान प्रीतम 'बनारसी' को।
चहुँ पद आदि अच्छरन नाम जानिये॥

असमय में ही अपने इस मित्र के परलोक गमन से कविवर के हृदय को वड़ा धक्का लगा जिसे वे जीवन भर नहीं भुला सके।

जौनपुर का नवाव चीनी किलीचखां भी आपका सरल हृदय मित्र था। किलीचखां वड़ा वुद्धिमान, पराक्रमी और दानी था। वह वादशाह की ओर से 'चार हजारी मीर' कहलाता था। जव वह जौनपुर का नवाव वनकर आया था तव उसने कविवर की कवित्व शक्ति की प्रशंसा सुनी थी। उसने उन्हें सम्मान पूर्वक वुलाया और वड़े आदर से वस्त्रादि देकर उन्हें सन्तोपित किया। अल्प काल में ही नवाव और कविवर में गहरी मित्रता हो गई उसने कविवर के पास नाम माला, श्रुतवोध, छन्द कोष, आदि अनेक ग्रन्थों का अभ्यास किया। संवत् १६७२ में चीनी किलीचखां का शरीरपात हो गया। कविवर को अपने इस मित्र की मृत्यु से वड़ा शोक हुआ।

पुत्रों का वियोग

कविवर के तीन विवाह हुए तीनों पत्नियों से आपके ९ वालक हुए किन्तु सभी वालक जन्म समय का क्षणिक हर्ष देकर अंत में वियोग के समुद्र में डुवोते चले गए।

अंतिम वालक ९ वर्ष का हो गया था कविवर ने इसका पालन पोपण वड़ी सुरक्षा के साथ किया था। वालक वड़ा होनहार था अल्प वय में उसकी वाक्य-निपुणता विद्या कुशलता और रूप माधुरी को देखकर लोग उसकी वड़ी सराहना करते थे; किन्तु दुर्दैवकाल को कविवर के जीवन को सुखमय वनाना अभीष्ट नहीं था वह तो उन्हें दुख के अवसरों को प्रदानकर उनके

हृदय की कठोर परीक्षा करने को तुला था। संवत् ९६ में कविवर के नेत्रों का तारा उक्त प्यारा एक मात्र पुत्र भी पिता के हृदय पर वज्राघात करता हुआ चला गया। अबकी बार कविवर का हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया उन्हें यह संसार भयानक प्रतीत होने लगा। उनके हृदय से भयानक दुःख के उद्गार निकल पड़े।

नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोय।
ज्यों तरुवर पतझार है, रहें ठूठ से दोय॥

वे अपने मन को सान्त्वना देते हुए विचार करने लगे।

तत्व दृष्टि जो देखिए, सत्यारथ की भांति।
ज्यों जाको परिग्रह घटै, त्यों ताको उपशांति॥

संसार के कष्टों से त्रसित हुए हृदय को शांति प्रदान करने के लिए इसके अतरिक्त उनके पास कोई उपाय नहीं था। वे दुःख के समय में अध्यात्मिकता की ही शरण लेते थे वहीं उन्हें संतोष भी प्राप्त होता था।

उस समय की परिस्थिति

उस समय राज्य की कैसी व्यवस्था थी, हाकिम लोग प्रजा पर किस प्रकार मनमानी करते थे इसका थोड़ा सा चित्रण कविवर ने अपने जीवन चरित्र में किया है।

संवत १६५४ में जौनपुर में कुलीचखां नामक एक हाकिम नियुक्त हुआ था उसने नगर के संपूर्ण जौहरियों को पकड़ बुलाया और उनसे एक बड़े भारी हीरे की याचना की। दुर्भाग्य से उनके

पास उतना बड़ा हीरा नहीं था इसलिए वे न दे सके अब क्या था हाकिम का क्रोध उबल पड़ा उसने सब जौहरियों को जेल में डाल दिया इतने पर भी उसका क्रोध शान्त न हुआ तब उसने उन सबको कोड़ों से पिटवाकर छोड़ दिया।

एक समय आग़ानूर बनारस और जौनपुर का हाकिम बनकर आया। वह बड़ा क्रूर था उसने प्रजा पर बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। कविवर कहते हैं—

आग़ा नूर बनारसी, और जौनपुर बीच।
कियो उदंगल बहुत नर, मारे कर अधमीच॥
हक नाहक पकरे सकल, जड़िया, कोठीवाल।
हुँडीवाल सराफ नर, अरु जौहरी दलाल॥
कोई मारे कोररा, कोई बेड़ी पाय।
कोई राखे भारवसी, सबको देय सजाय॥

राज्यगद्दी परिवर्तित होने के समय जनता में कितना भय और आतङ्क छा जाता था इसका थोड़ासा वर्णन सुनिए।

संवत् १६६२ में बादशाह अकबर का स्वर्गवास हो गया। अब क्या था राज्य में चारों ओर भयानक कोलाहल मच गया। लोगों को अपने नेत्रों के सम्मुख विपत्ति मुंह फाड़कर खड़ी दिखने लगी। सब अपनी अपनी जमा पूंजी की रक्षा में सतर्क हो गए।

घर घर दर दर दिये कपाट।
हटवानी नहिं बैठे हाट॥

हुंडवाई गाड़ी कहुँ और, नक़द माल निरभरमी ठौर ।
भले वस्त्र अरु भूषण भले, ते सब गाढ़े धरती तले ॥
घर घर सबनि विसाहे शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र ।
ठाढ़ों कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेस ॥
ऊँच नीच कोउ नहिं पहिचान, धनी दरिद्री भये समान ।
चोरि धाढ़ दीसै कहुँ नाहिं, योही अपभय लोग डराहिं ॥

दश वारह दिन में वादशाह जहाँगीर के गद्दी पर वैठने से सर्वत्र शांति हो गई। धनी लोगों के वस्त्र और आभूषण चमकने लगे और दरिद्री फटे वस्त्र पहनकर भीख माँगने लगे।

प्लेग का प्रकोप

संवत १६७३ के फागुन मास में आगरे में उस रोग की उत्पति हुई जो आज सारे भारतवर्ष को अपना घर वनाए हुए है जिसका नाम सुनकर स्वस्थ मानव का हृदय भी भय से काँप उठता है और जिसकी निर्दय दाढ़ों ने लक्षावधि प्रजा को अपना ग्रास वना लिया है। जिसका इलाज करने में डाक्टर लोग असमर्थ हो जाते है हकीम जवाव दे देते हैं और वैद्य वगले झोंकते हैं। जिसे अंग्रेजी में प्लेग और हिन्दी में मरी कहते हैं कविवर ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है।

इसही समय ईति विसतरी, परी आगरे पहिली मरी ।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग, परगट भया गांठ का रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिन मांहि, काहू की वसाय कछु नाहिं ।
चूहे मरें वैद्य मर जाँहि, भय सौं लोग अन्न नहिं खांहि ॥

सस्ता पन

बादशाह अकबर के समय में भारतवर्ष में कितना सस्तापन था इसका परिचय कविवर ने अपनी एक घटना में दिया है।

एक समय कविवर व्यापार के लिए आगरे आये थे किन्तु उनके सभी जवाहरात मार्ग में गिर जाने के कारण पास में एक फूटी कौड़ी भी नहीं बची। द्रव्य के अभाव के कारण उन्होंने बाजार जाना भी छोड़ दिया। वे एक धर्मशाला में ठहरे हुए थे। उन्होंने अपने मनको बहलाने के लिए मृगावती की कथा पढ़ना प्रारम्भ की। कथा सुनने के लिए कई श्रोतागण आने लगे। उनमें एक कचौड़ीवाला भी था। आप उसके यहाँ से प्रतिदिन दोनों समय कचौड़ियाँ उधार लेकर खाने लगे। आपने सात माह तक दोनों समय पूरी कचौड़ी खाई। अन्त में कचौड़ी वाले का हिसाब किया गया। हिसाब करने पर दोनों समय के भोजन का सात माह का कुल १४) चौदह रुपये का जोड़ हुआ। आगरे जैसे शहर में दोनों समय की पूरी कचौड़ियों के भोजन का खर्च केवल दो रुपया मासिक था। वह कैसा सस्ता समय था आज कल तो दो रुपये में एक आदमी का सबेरे का चाय पान भी पूरा नहीं होता।

विद्या की दशा

उस समय जनता में विद्या पढ़ने के प्रति अत्यन्त उपेक्षा थी। विद्या पढ़ना ब्राह्मण और भाटों का ही कर्तव्य समझा जाता है। इसके विषय में कविवर ने एक घटना का चित्रण किया है।

कविवर को विद्या पढ़ने तथा काव्य रचना की ओर अत्यन्त प्रेम था। इस प्रेम में वे व्यापार आदि कार्यों से विलकुल ही विमुख हो गए थे। उस समय उनके पिता उन्हें निम्न प्रकार कहकर समझाते थे।

बहुत पढ़ै वामन अरु भाट,
वणिक पुत्र तो बैठें हाट।
बहुत पढैं सो मांगे भीख,
मानहु पूत बड़ों की सीख॥

उस समय के मनुष्यों की आयु

उस समय के मनुष्यों की आयु का अनुमान कितना था इसका वर्णन उन्होंने अपने चरित्र में किया है।

उन्होंने अपने ५५ वर्ष का जीवन वृतान्त लिखते हुए अर्द्ध-कथानक को समाप्त किया है। अर्द्ध कथानक समाप्त करते समय आप अपनी आयु के सम्बन्ध में निम्न प्रकार लिखते हैं:—

बरस पंचावन ए कहे, बरस पंचावन और।
बाकी मानुप आयु में, यह उतकिष्टी दौर॥
बरस एक सौ दश अधिक—परमित मानुप आय।
सौलह सै अट्ठानवे, समय बीच यह भाव॥

संवत् १६५८ में मनुष्य की आयु का भाव एक सौ दश वर्ष का था।

स्नेह और विश्वासपात्रता

उस समय जनता में परस्पर अत्यन्त स्नेहभाव रहता था विश्वासपात्रता तो प्रत्येक गृह में निवास करती थी। अपरिचित व्यक्ति की भी सहायता करना उस समय के नागरिक अपना कर्तव्य समझते थे।

एक बार जौनपुर के हाकिम कुलीचखां ने नगर के सभी जौहरियों को अत्यन्त कष्ट दिया उसके क्रूर व्यवहार से दुखित होकर सभी जौहरियों ने जौनपुर का परित्याग कर दिया।

कविवर के पिता खरगसैन जी ने भी जौनपुर त्याग कर पश्चिम की ओर प्रयाण किया वे शाहजादपुर के निकट ही पहुँचे थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा, बिजली तड़कने लगी और घोर अन्धकार छा गया उन्हें अपने कुटुम्ब तथा विपुल सम्पत्ति की रक्षा असम्भव प्रतीत होने लगी। उनका हृदय इस विपत्ति से व्याकुल हो गया था। उस नगर में एक करमचंद नामक माहुर वैश्य रहते थे। वह खरगसैन जी से परिचित थे। उन्हें किसी प्रकार खरगसैन जी की विपत्ति का पता लग गया। वे उसी समय उनके निकट आए और अपने गृह ले जाकर बड़े आग्रह से अपना धन धान्य से पूर्ण सारा गृह सौंप दिया और आप अन्य दूसरे गृह में रहने लगा। उस समय का वर्णन कविवर इस प्रकार करते हैं:—

घन बरसै पावस समै, जिन दीनों निज भौन।
ताकी महिमा की कथा, मुँह सौं वरनै कौन॥

जब तक जौनपुर में कुलीचखां का शासन रहा तब तक उक्त वैश्य महोदय ने उनको अपने गृह का स्वामी बनाकर बड़े

प्रेम और आग्रह से रक्खा उसके व्यवहार को देखकर कविवर ने कहा है।

वह दुख दियो नवाव कुलीच।
यह सुख शाहजादपुर बीच॥

एक समय व्यापार में इतनी हानि हुई कि कविवर के पास कुछ भी द्रव्य नहीं रहा। तब आप एक कचौड़ी वाले के यहाँ उधार कचौड़ी खाने लगे। कचौड़ी वाले के यहाँ कई दिन तक उधार खाते हुए एक दिन आपने बड़े संकोचपूर्वक कहा—

तुम उधार कीन्हों बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहाँ सौं लेहु॥

कचौड़ी वाला भला आदमी था वह विश्वास के महत्व को समझता था। कविवर के व्यवहार से उसे ज्ञात हो गया था कि यह अविश्वस्त पुरुष नहीं है। उसने कहा—आप कुछ चिन्ता न कीजिए आपकी जब तक इच्छा हो आप बिना संकोच के उधार लेते जाइए। मेरे द्रव्य की कुछ भी चिन्ता न कीजिए और आपकी इच्छा जहाँ रहने को हो वहाँ रहिए मेरा द्रव्य वसूल हो जायगा आपने उसके यहाँ सात माह तक उधार भोजन किया परन्तु उसने कभी किसी प्रकार का अविश्वास प्रकट नहीं किया।

एक दिन मृगावती की कथा सुनने तावी ताराचंदजी नाम के एक सज्जन आए। यह दूर के रिश्ते में बनारसीदास जी के श्वसुर होते थे उन्होंने बनारसीदास जी को पहिचान लिया और स्नेह के साथ एकान्त में ले जाकर प्रार्थना की, कि कल आप मेरे घर को अवश्य ही पवित्र कीजिए। वे सवेरे ही उन्हें साथ ले जाने के

लिए आ गए। कविवर इनके साथ साथ चल दिये। इधर श्वसुर महोदय अपने एक नौकर को आज्ञा दे गए कि तू इस मकान का भाड़ा चुकाकर इनका सामान अपने घर ले आना। नौकर ने आज्ञा का पालन किया। भोजन के वाद वनारसीदास जी को यह घटना ज्ञात हुई तव श्वसुर महोदय ने हाथ जोड़कर कहा कि आपको दुःखी नहीं होना चाहिए यह घर आपका ही है। आपके प्रसन्नता पूर्वक यहाँ रहने से मुझे अत्यन्त हर्ष होगा। उनके अनुरोध को कविवर का लज्जाशील हृदय न टाल सका। श्वसुर महोदय ने उन्हें दो माह तक बड़े प्रेम और आदर के साथ रक्खा।

अर्द्ध कथानक का उपसंहार

अपने अर्द्ध कथानक ग्रन्थ में कविवर ने ५५ वर्ष की जीवन घटनाएँ अंकित की हैं इस ५५ वर्ष के जीवन में वे अनेक घटना चक्रों में ग्रस्त रहे हैं। उनका जीवन कष्ट, यातनाओं और चिन्ताओं का स्थान ही बना रहा है गार्हस्थ जीवन में उन्हें ऐसा अवसर बहुत ही थोड़ा मिला है जिसमें वे सुखी रहे हों। किन्तु कविवर ने सभी कष्टों और यातनाओं को बड़ी निर्भीकता और साहस के साथ सहन किया है। इतने समय में उनका हृदय अनेक विकल्पों और मानसिक निर्बलताओं से युद्ध ही करता रहा है किन्तु अन्त में उन्होंने अपने मन पर विजय प्राप्त की और अपने मानवीय कर्तव्यों में उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त की है। उनपर वासनाओं का आक्रमण हुआ उन्होंने कविवर पर अपना पूर्ण प्रभाव डाला और कुछ समय के लिए वे उनके प्रभाव में आ गए। किन्तु वे अपने आपको एक दम भूल नहीं गए। आत्मा की आवाज़ को उन्होंने बिलकुल भुला नहीं दिया और

अन्त में उन्होंने अपनी आत्म शक्ति को संभाला और उसके बल से वासनाओं पर विजय प्राप्त की।

उनके जीवन में एक समय ऐसा भी आया जब वे व्यवहार तथा धर्म क्रियाओं को बिलकुल भुला बैठे किन्तु उन्हें मिथ्या हठ नहीं था। पता पड़ जाने पर अपनी भूल को स्वीकार करने और उन भूलों का प्रायश्चित लेने में उन्हें संकोच नहीं होता था। उनका हृदय सरल और उदार था इसीसे आध्यात्मिकता तथा निश्चयवाद के क्षेत्र में पहुँचने पर यद्यपि कुछ समय को प्रथम आवेश के कारण वे व्यवहार से शून्य हो गए थे परन्तु पूर्ण मनन और अध्ययन के पश्चात् उन्होंने उसकी सत्ता और आवश्यकता को स्वीकार कर लिया। वे पुनः सभी धर्माचरणों को करने लगे।

अर्द्ध कथानक में उन्होंने अपने ५५ वर्ष का जीवन वृतांत लिखा है। इसके पश्चात् उनका जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ इसका परिचय अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है संभवतः कविवर ने अपना अंतिम जीवन भी लिखा होगा किन्तु वह अभी तक अनुपलब्ध ही है। उनका अंतिम जीवन संभवतः सुख और शांति पूर्ण व्यतीत हुआ होगा। क्योंकि उन पर से सांसारिक आकुलताओं का बोझ कम हो जाने से उनका लक्ष्य आध्यात्मिकता की ओर अधिक हो गया था।

अन्य घटनाएं तथा किंबदंतियां

कविवर के जीवन से संबंध रखने वाली अनेक घटनाएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन घटनाओं का उल्लेख कविवर ने

अपने जीवन चरित्र में नहीं किया है किन्तु यह घटनाएँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि इनके विना आपका जीवन चरित्र अधूरा सा ही रह जाता है।

इसमें कुछ घटनाएं ऐसी हैं जिन पर सर्व साधारण जनता को विश्वास नहीं होगा किन्तु कविवर की महत्वता और उनकी महान् आत्म शक्ति को देखते हुए उन्हें मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

कविवर की काव्य प्रतिभा के कारण प्रतिष्ठित व्यक्तियों तथा उच्च श्रेणी के राज्य कर्मचारियों में उनका विशेष समादर था। उनके गुणों और सहृयता के कारण सभा में उनका बेरोक टोक प्रवेश था। किन्तु कविवर को किसी भी राज्य सत्ता अथवा प्रतिष्ठित मित्रों के द्वारा किसी आर्थिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा नहीं हुई। यही कारण था कि उनका सर्वत्र ही विशेष समादर होता था।

नीचे उनके कुछ विशेष गुण तथा उनके द्वारा घटित हुई कुछ जन-श्रुतियों का वर्णन किया जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का सत्संग

हिन्दी भाषा क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदासजी का नाम बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है उनकी बनाई रामायण का भारत में असाधारण प्रचार है। वास्तव में तुलसीदासजी भारत के हिन्दी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। गोस्वामीजी बनारसीदासजी के समकालीन थे। जिस समय तुलसीदासजी का शरीरपात हुआ उस समय कविवर की आयु ३७ वर्ष की थी।

गोस्वामी जी एक सच्चरित्र महात्मा थे और बनासीदासजी सत्संग के प्रेमी थे। उन्होंने कई वार तुलसीदासजी से मिलकर उनके सत्संग का लाभ उठाया। एक वार बनारसीदासजी के काव्य की प्रशंसा सुनकर तुलसीदासजी उनसे मिलने आगरा आये उनके साथ कई चेले भी थे। कविवर से मिलकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। जाते समय उन्होंने अपनी बनाई रामायण की १ प्रति बनारसीदास को भेंट स्वरूप दी।

बनारसीदासजी ने भी पार्श्वनाथस्वामी की स्तुति की दो तीन कविताएँ गोस्वामी जी को भेंट स्वरूप प्रदान की। कई वर्ष पश्चात् कविवर की गोस्वामी जी से फिर भेंट हुई तुलसीदास जी ने रामायण के काव्य सौन्दर्य के सम्बन्ध में बनारसीदास जी से पूछा, जिसके उत्तर में कविवर ने एक कविता उसी समय रचकर सुनाई:—

विराजै रामायण घट माँहि।

मरमी होय मरम सो जानै मूरख मानै नाहिं॥
आतम राम ज्ञान गुन लछमन सीता सुमति समेत।
शुभोपयोग वानर दल मंडित वर विवेक रण-खेत॥
ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि गई विषयादिति भाग।
भई भस्म मिथ्यामति लंका उठी धारणा आग॥
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल लरे निकांक्षित सूर।
जूझे राग द्वेष सेनापति संशयगढ़ चकचूर॥
बिलखत कुम्भकरण भव विभ्रम पुलकित मन दरयाव।
थकित उदार वीर महिरावण, सेतु-बंध सम भाव॥
मूर्छित मन्दोदरी दुराशा सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे क्षपक गुण बान॥

निरखि सकति गुन चक्र-सुदर्शन उदय विभीषण दीन।
फिरै कबंध मही रावण की प्राण भाव शिर हीन॥
इह विधि सकल साधु घट अंतर होय सहज संग्राम।
यह विवहार दृष्टि रामायण केवल निश्चय राम॥

बनारसीदास जी की इस आध्यात्मिक रचना से तुलसीदास जी प्रसन्न होकर बोले आपकी रचना मुझे बहुत प्रिय लगी है। मैं उसके बदले में क्या सुनाऊँ? उस दिन आपकी पार्श्वनाथ स्तुति पढ़कर मैंने भी एक पार्श्वनाथ स्तोत्र बनाया था उसे आपको भेंट करता हूँ। यह कहते हुए उन्होंने "भक्ति विरदावली" नामक एक सुन्दर कविता कविवर जी को प्रदान की। कविवर जी को उससे बहुत सन्तोष हुआ और बहुत दिनों तक समय समय पर दोनों की भेंट होती रही।

सत्य की परीक्षा

जैन धर्म के पूर्ण श्रद्धानी होने पर भी आपके हृदय में अंधश्रद्धा को किंचित् भी स्थान नहीं था आप बिना ठीक तरह से परीक्षा किये किसी पर भी विश्वास नहीं करते थे।

एक समय आगरे में बाबा शीतलदासजी आये थे उनकी शांतिता और क्षमा की अनेक चर्चाएं नगर में फैल गईं। कविवर उनकी परीक्षा के लिये पहुँच गये और एक स्थान पर बैठकर उनका उपदेश सुनने लगे। जब उपदेश समाप्त हुआ तब आप बोले—महाशय! आपका नाम क्या है? बाबाजी बोले—मुझे शीतलदास कहा करते हैं। बातें करने के कुछ देर बाद फिर पूछा—कृपानिधान! मैं भूल गया, आपका नाम। उत्तर मिला—

शीतलदास। एक-दो बातें करने के पीछे आप फिर पूछ बैठे महाशय! क्षमा कीजिये, मैं फिर भूल गया। आपका नाम। इस तरह जबतक आप वहाँ बैठे रहे फिर फिर नाम पूछते रहे। फिर वहाँ से उठकर घर को चलने लगे तब लौटकर फिर पूछने लगे। महाराज! क्या करूँ, आपका नाम फिर भूल गया बतला दीजिये। अब तक तो बाबा जी शान्ति के साथ उत्तर देते रहे। अब की बार गुस्से से फूट पड़े, झुँझलाकर बोले—अबे बेवकूफ! दश बार तो कह दिया कि शीतलदास! शीतलदास! शीतलदास! फिर क्यों खोपड़ी खाए जाता है। बस क्या था, परीक्षा हो चुकी, महाराज फेल हो गये कविवर यह कहते हुए चल दिये कि महाराज! आपका यथार्थ नाम ज्वालाप्रसाद होने योग्य है।

इसी प्रकार एक समय दो नग्न मुनि आगरे में आये। वे मन्दिर के दालान में एक झरोखे में बैठे थे, भक्तजनों की भीड़ लगी थी। कविवर झरोखे के पास बगीचे में उनके साम्हने खड़े होकर उनकी परीक्षा करने लगे। जब किसी मुनि की दृष्टि उनपर आती तब वे अँगुली दिखाकर उन्हें चिढ़ाते। मुनियों ने यह लीला देखकर उस ओर से मुँह फेर लिया परन्तु कविवर ने अँगुली मटकाना बन्द न किया। मुनिराज की क्षमा कूचकर गई. वे अपने भक्तजनों से बोले, देखो! बाग में कोई कूकर ऊधम मचा रहा है। यह सुनते ही कविवर रफू-चक्कर हो गये। लोगों ने बाग में जाकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था केवल बनारसीदास आ रहे थे. उन्होंने वापिस लौटकर कहा, महाराज! वहाँ तो कूकर शूकर कोई न था हमारे यहाँ के प्रतिष्ठित पंडित बनारसीदास जी थे। यह सुनकर मुनियों को बहुत चिन्ता हुई कि कोई विद्वान् परीक्षक था। बस वह दो चार दिन रहकर ही वहाँ से चले गये।

कविवर की दृढ़ता

कविवर वनारसीदासजी अपने विचारों में पूर्ण दृढ़ थे उनमें स्वाभिमान और आत्मगौरव की मात्रा पूर्ण रूप में थी विचारपूर्वक जिस सिद्धान्त को वे गृहण कर लेते थे किसी भय अथवा प्रलोभन द्वारा उससे विचलित होना अत्यन्त कठिन था अपनी प्रतिज्ञा पालन में वे साहसी और दृढ़ थे। कहते हैं—

एक समय वादशाह जहाँगीर के दरवार में एक जवान मुसलमान ने आकर कहा—हुजूर! वादशाह सलामत! गजव की वात है कि आपकी सल्तनत में ही ऐसे विद्रोही मौजूद हैं जो आपको सलाम नहीं करते। वादशाह ने पूछा—ऐसा कौन आदमी है जो जहाँगीर की हुकूमत को नहीं मानता। उस मनुष्य ने वनारसीदासजी का नाम लिया वनारसीदासजी सम्मान पूर्वक दरवार में वुलाये गये वह निर्भीकता पूर्वक अपने स्थान पर बैठ गये। आज संपूर्ण सभासदों की दृष्टि उन्हीं की ओर लगी हुई थी। वादशाह ने उनसे सलाम करने के लिये कहा तव उन्होंने वड़े साहस के साथ उसी समय निम्न लिखित पद्य वनाकर सुनायाः—

जगत के मानी जीव है रह्यो गुमानी ऐसो।
आश्रव असुर दुख दानी महाभीम है॥
ताको परिताप खंडिवे को परगट भयो।
धर्म को धरैया कर्म रोग को हकीम है॥

जाके परभाव आगे भागे पर भाव सब ।
नागर नवल सुख सागर की सीम है ।।
संवर को रूप धरैं साधै शिव राह ऐसो ।
ज्ञानी बादशाह ताको मेरी तसलीम है ।।

उनकी निर्भीकता और ततकालीन काव्य रचना से बादशाह बहुत प्रसन्न हुये और उनका बहुत सत्कार किया ।

शाहजहाँ बादशाह के दरबार में कविवर बनारसीदासजी ने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बादशाह की कृपा के कारण उन्हें प्रतिदिन दरबार में उपस्थित होना पड़ता था और महल में जाकर प्रायः निरंतर शतरंज खेलना पड़ती थी कविवर शतरंज के बड़े खिलाड़ी थे। बादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्य के साथ शतरंज खेलना पसंद नहीं करते थे। बादशाह जिस समय दौरे पर निकलते थे उस समय भी वे कविवर को साथ में रखते थे तब अनेक राजा और नवाब एक साधारण वणिक को बादशाह की बराबरी बैठा देख खूब चिढ़ते थे। उस समय कविवर ने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के सिवाय किसी के आगे मस्तक नहीं झुकाऊंगा। बादशाह ने यह बात सुनी। वे कविवर की श्रद्धा को जानते थे किन्तु उनकी श्रद्धा के इस परिणाम का उन्हें ध्यान नहीं था उन्होंने कविवर की प्रतिज्ञा की परीक्षा करने की एक युक्ति सोची वे एक ऐसे स्थान पर बैठे जिसका द्वार बहुत छोटा था। और जिसमें विना सिर नीचा किए कोई प्रवेश नहीं कर सकता था।

कविवर बुलाये गए। वह द्वार पर आते ही बादशाह की चालाकी समझ गए और शीघ्र ही द्वार में पहले पैर डालकर प्रवेश कर गए। इस क्रिया से उन्हें मस्तक न झुकाना पड़ा।

बादशाह इस बुद्धिमानी से प्रसन्न हुए और हँसकर बोले, कविराज ! क्या चाहते हो, कविवर ने तीन बार वचन बद्ध कर कहा जहांपनाह ! आज के पश्चात् फिर कभी दरबार में स्मरण न किया जाऊं यही मेरी याचना है इस विचित्र याचना से बादशाह स्तंभित रह गए। वह दुखित और उदास होकर बोले कविवर ! आपने अच्छा नहीं किया। इतना कहकर वह महल में चले गए और कई दिन तक दरबार में नहीं आए। कविवर अपने आत्म ध्यान में लवलीन रहने लगे।

दयालुता

कविवर बड़े दयाशील थे किसी के दुःख को देखकर वे शीघ्र ही दुखित हो जाते थे, और उसके दुःख दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करते थे। एक समय वे सड़क पर शुष्क भूमि देखकर मूत्र त्यागकर रहे थे। उसी समय एक नए सिपाही ने आकर उन्हें पकड़ लिया और दो चार चपत जड़ दिए, कविवर ने चूं तक नहीं किया।

दूसरे दिन किसी कार्य के लिए बादशाह ने उसे बुलाया दैवयोग से कविवर बनारसीदास उस समय बादशाह के निकट बैठे थे उन्हें देखकर बेचारे सिपाही के प्राण सूख गए, सिपाही कार्य करके चला गया। तब कविवर ने बादशाह से कहाः— हुज़ूर ! यह सिपाही बड़ा ईमानदार है। और गरीब है यदि इसका कुछ वेतन बढ़ा दिया जाय, तो बेचारे की गुज़र होने लगेगी, बादशाह ने तुरंत ही उसकी वेतन वृद्धिकर दी। इस

घटना से सिपाही चकित हो गया। उसका हृदय 'धन्य, धन्य' कहने लगा। उस दिन से वह नित्य प्रातःकाल उनके द्वार पर जाकर नमस्कार करता, तब कहीं अपनी नौकरी पर जाता।

जीवन समाप्ति

अर्ध कथानक लिखने के पश्चात् कविवर कितने समय जीवित रहे इसका कुछ निश्चय नहीं हो सका है।

कविवर का दोहोत्सर्ग अविदित है परन्तु मृत्यु काल की यह किंवन्दती अत्यंत प्रसिद्ध है। जिस समय कविवर मृत्यु शैय्या पर पड़े थे उस समय उनका कंठ अवरुद्ध हो गया था, रोग की तीव्रता के कारण वे बोल नहीं सकते थे और इसलिए अपने अन्त समय का निश्चयकर ध्यान में मग्न हो रहे थे।

उनकी मौन मग्नता को देखकर मूर्ख लोग कहने लगे कि इनके प्राण माया और कुटुम्बियों में अटक रहे हैं।

उसको कविवर सहन नहीं कर सके और इशारे से पट्टी और लेखनी मँगाकर दो छन्द गढ़कर लिख दिए।

ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनंत सुमोहना॥
जापरजै को अन्त, सत्यकर मानना।
चले बनारसीदास, फेर नहिं आवना॥

हम बैठे अपने मौन सों ।
दिन दश के महिमान जगत जन, बोलि बिगारै कौन सों ॥
गए बिलाय भरम के बादर, परमारथ पद पौन सों ।
अब अतंर गति भई हमारी, परचे राधारौन सों ॥
प्रगटी सुधा पान की महिमा, मन नहिं लागे वौन सों ।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौन सों ॥
रहे अघाय पाय सुख संपति, को निकसै निज भौन सों ।
सहज भाव सद्गुरु की संगति, सुरझे आवागौन सों ॥

गुण दोष

जीवन-चरित्र के अन्त में नायक के गुण दोषों की आलोचना करने की प्रथा है । नायक गुण के दोषों का वर्णन करने में बड़ी कठिनता होती है किन्तु कविवर ने इस कठिनता को स्वयं हल कर दिया है । उन्होंने अर्ध-कथानक को पूर्ण करते समय अपने गुण दोषों का स्वयं वर्णन किया है ।

अब बनारसी के कहों, वर्तमान गुण दोष ।
विद्यमान पुर आगरे, सुखसों रहै सजोष ॥

गुण कथन

भाषा कवित अध्यातम मांहि, पंडित और दूसरो नांहि ।
क्षमावंत संतोषी भला, भली कवित पढ़वे की कला ॥
पढ़ै प्राकृत संस्कृत शुद्ध, विविधि-देशभाषा-प्रतिबुद्ध ।
जानै शब्द अर्थ को भेद, ठाने नहीं जगत को खेद ॥

मिठबोला सबही सों प्रीति, जैन धर्म की दिढ़ परतीति ।
सहनशील, नहिं कहै कुबोल, सुथिर चित्त नहिं डांवाडोल ॥
कहै सबनि सौं हित उपदेश, हिरदै सुष्ट दुष्ट नहिं लेश ।
पररमणी को त्यागी सोय, कुव्यसन और न ठानै कोय ॥
हृदय शुद्ध समकित की टेक, इत्यादिक गुन और अनेक ।
अल्प जघन्य कहे गुन जोय, नहिं उत्कृष्ट न निर्मल होय ॥

दोष कथन

क्रोध मान माया जल रेख, पै लक्ष्मी को मोह विशेख ।
पोतै हास्य कर्मदा उदा, घर सों हुआ न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीत, नहीं दान पूजा सों प्रीत ।
थोरे लाभ हर्ष बहु धरै, अल्प हानि बहु चिन्ता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाय, सीखै भंडकला मनलाय ।
भाषै अकथ कथा विरतंत, ठानै नृत्य पाय एकन्त ॥
अनदेखी अनसुनी बनाय, कुकथा कहै सभा में आय ।
होय निमग्न हास्य रस पाय, मृषावाद बिन रह्यो न जाय ॥
अकस्मात भय व्यापै घनी, ऐसी दशा आय कर बनी ।

उपसंहार

कबहूं दोष कबहुँ गुन जोय, जाको हृदय सुपरगट होय ।
यह बनारसी जी की बात, कही थूल जो हुती विख्यात ॥

उपसंहार

कविवर बनारसीदास जी का जीवन सांसारिक कठिनाइयों और परिस्थितियों से युद्ध करते २ ही व्यतीत हुआ है। उनका हृदय उदार और विशाल होने के कारण उन्होंने प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति का मुकाबला किया और उसमें से संतोष और शांति निकालने का प्रयत्न किया है। वे कर्मशील और उत्साही रहे हैं।

कहीं कहीं वे नीचे गिरते हुए बहुत सँभले हैं ऐसे अवसर उन्हें कई बार प्राप्त हुए हैं जब वे दिशा भूल गए किन्तु उन्होंने शीघ्र ही मार्ग प्राप्त कर लिया और उस पर वे निर्भीकता से चल पड़े हैं।

युवकगण जिस समय प्रलोभनों के तूफान में फँस जाते हैं तब फिर उससे निकलना उन्हें बहुत ही कठिन हो जाता है। कविवर पर प्रलोभनों का आक्रमण हुआ और वे उनके द्वारा ठगाए गए किन्तु वे वीरता के साथ शीघ्र ही उसमें से निकल भागे। युवकों के लिए उनकी यह विजय स्मरणीय है। उन्हें कविवर के इस आदर्श को ग्रहण करना चाहिए।

शुष्कआध्यात्मवाद के रंग में भी उनका जीवन रंगा गया है परन्तु वह रंग ऐसा नहीं था जो छूट ही न सके। वर्तमान का अधिकांश युवक तथा शिक्षित समाज भी इसी तरह निरे अध्यात्मवाद को ग्रहण कर लेता है और आचरण तथा क्रियाओं की मज़ाक उड़ाया करता है। किन्तु—

कविवर ने सिद्धान्त का अच्छी तरह से मनन किया और उन्होंने क्रिया और ज्ञान दोनों के रहस्य को समझा। उन्होंने इस

सत्य सिद्धान्त को स्वीकार किया कि केवल कोरी क्रियाएँ आडंवर हैं और केवल ज्ञानमात्र ही वाद विवाद का विषय है किन्तु जीवन सुधार के लिए दोनों के संयोग की आवश्यकता है और अन्त में उन्होंने दोनों को ग्रहण किया। हमारा कर्तव्य है कि हम भी किसी भी सिद्धान्त का भली प्रकार मनन करें उसकी तह में प्रवेश करने का प्रयत्न करें और तब उसे ग्रहण करें इसके बाद भी यदि हमें उसकी असत्यता प्रतीत हो तो हम उसे परिवर्तित करने में किसी प्रकार का संकोच न करें।

कविवर के जीवन चरित्र को समाप्त करते हुए हम भावना करते हैं कि हमारी समाज में पुनः ऐसे उत्कृष्ट कवियों का जन्म हो और वे अपने अमर काव्य द्वारा संसार को जीवन प्रदान करें।

कविवर बनारसीदास का काव्य प्रेम

कविवर को जीवन से ही काव्यप्रेम था। यौवन की उन्मत्तता के समय शृंगार रसकी रचनाओं से लेकर अन्त समय तक वे अनुपम आध्यात्मिक रस की तरंगों में डूबे रहे हैं।

उनमें स्वाभाविक काव्य प्रतिभा थी उनका हृदय सरसता और सहृदयता से परिपूर्ण था। काव्य को उन्होंने अपना जीवन साथी बनाया था। प्रतिकूल अथवा अनुकूल परिस्थितियों में काव्य छाया के समान उनके साथ रहा है। दुःख और विपदाओं के समय काव्य के द्वारा उन्हें सहानुभूति और सान्त्वना प्राप्त हुई है विलास के समय वह उनकी वासनाओं का उद्दीपक रहा है। पत्नी तथा पुत्र के दारुण वियोग के समय वह वेदान्त के रूप में प्रकट हुआ है और अन्त में आत्म परिचय और आध्यात्मिकता में विलीन हो गया है। कवि की भावनाएँ जिस ओर आकर्षित हुई हैं काव्य की धारा उसी ओर स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हुई है।

कवि के मानस में काव्य का स्वाभाविक उद्गम था उन्हें उसके लिए किसी तरह के प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। कभी २ भावावेश में वह विशेष रूप से छलक उठा था अन्यथा वह निरंतर ही स्वाभाविक गति से लहराता हुआ चला है।

कविवर के काव्य में उनके विचारों और अनुभवों का आसव है उनका काव्य प्रेम, आत्मिक-तृप्ति और आत्म-संतोष के लिए ही था किसी प्रकार के स्वार्थ साधन की कलुषित कामना उसमें नहीं थी। उन्होंने किसी व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिए अथवा प्रशंसा के लिए काव्य की रचना नहीं की थी। काव्य के द्वारा उन्हें किसी प्रकार के यश अथवा वैभव की भी आकांक्षा नहीं थी। यदि वे चाहते तो अपनी काव्य-कला के द्वारा बादशाहों तथा राजाओं को प्रसन्नकर वैभवशाली बनकर किसी सम्मान पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हो सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं चाहा। इसीलिए उनका काव्य सर्वथा निर्दोष, पवित्र और उच्च भावनाओं से पूर्ण रहा है। वे काव्य में स्वयं तन्मय हो गए हैं आत्म अनुभूति में गहरे डूबकर उन्होंने संतोष और तृप्ति की साधना की है उनका चरम लक्ष्य केवल आत्म अनुभव और लोक सेवा भाव रहा है यही कारण है कि उनके काव्य में आत्मोद्धार और आत्म परिचय की स्पष्ट झांकी दृष्टिगत होती है।

अनेक गार्हस्थिक कठिनाइयों के समय भी वे अपने काव्य प्रेम का मोह नहीं त्याग सके और विपत्ति के समय भी काव्य के साथ विनोद करना वे नहीं भूले हैं।

यद्यपि यौवन के उन्मत्त प्रसङ्ग में उनका मन वासनाओं और शृंगार की उपासना की ओर आकर्षित हुआ था और उस

समय उन्होंने नवरस पूरित शृंगार ग्रंथ की विशेष रूप से रचना की। उनकी यह रचना मित्रों के हृदय को आकर्षित करनेवाली थी उसमें अलंकार और रसों की अनूठी छटा अवश्य होगी किन्तु अधिक समय तक आपके मन पर उसका प्रभाव नहीं रह सका और उसपर विवेक की छाप पड़ते ही वह गोमती के गर्त में विलीन कर दिया गया। उसमें कविवर की काव्य प्रतिभा का चमत्कार अवश्य होगा किन्तु वह सदैव के लिए नष्ट हो जाने के कारण उसके संबन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रवुद्ध होने के पश्चात् कविवर ने आत्म अनुभूति मय अपनी जिस काव्य प्रतिभा को प्रवाहित किया है वह उनकी एक अमूल्य संपत्ति है।

आध्यात्मिक जैसे शुष्क विषय को कवि की प्रतिभा ने सरस और सर्व ग्राह्य बना दिया है उसके प्रत्येक पद्य में कवि की लेखनी का अद्भुत चमत्कार भरा हुआ है।

कविवर बनारसीदासजी की रचनाएं

कविवर बनारसीदासजी द्वारा निर्माण किए हुए नाटक समयसार, बनारसी विलास, नाममाला और अर्द्धकथानक ये चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये चारों ग्रंथ उनकी काव्य रचना के श्रेष्ठ प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त बनारसीदासजी ने शृंगार रस पर भी एक बड़ा सुन्दर ग्रंथ लिखा था परन्तु विचारों में परिवर्तन हो जाने के कारण आपने उसे गोमती नदी की विशाल धारा में भेंट कर दिया था।

नाटक समयसार

यह ग्रन्थ भाषा साहित्य के गगन मंडप का निष्कलंक चन्द्रमा है इसकी रचना में कविवर ने अपनी जिस अपूर्व काव्य शक्ति का परिचय दिया है उसे भाषा साहित्य के अध्यात्म की चरम सीमा कहें तो अत्युक्ति न होगी।

इस ग्रन्थ की संपूर्ण रचना अपूर्व आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है इसके पढ़ने वाले को उसके द्वारा निर्मल आत्म शांति की प्राप्त होती है और वे निराकुल सुख के नन्दन निकुंज में विचरण करने लगते हैं और आत्मा की खोज में इधर उधर भटकने वालों को इससे आत्म दर्शन होता है। कविवर की आत्म अनुभूति के सुन्दर चित्रों का यह एक अद्वितीय अलबम ही है। इसका प्रत्येक चित्र अनूठा और एक दूसरे से बढ़कर है। चतुर चित्रकार ने इसमें इस तरह का रङ्ग भरा है जो कभी फीका नहीं पड़ता न कभी उतरता है और जिसके रङ्ग में रङ्ग जाने पर फिर दूसरा रङ्ग नहीं चढ़ता।

नाटक समयसार के मूलकर्ता भगवत् कुंदकुंदाचार्य हैं यह मूलग्रंथ प्राकृत भाषा में है उसपर परम भट्टारक श्री मदमृत-चन्द्राचार्य ने संस्कृत टीका तथा कलशों की रचना की है और पंडित रायमल्लजी ने इसकी भाषा बालबोधिनी टीका की है। यद्यपि कविवर ने इन्हीं तीनों के आश्रय से इस अपूर्व पद्यानुवाद की रचना की है परन्तु अपनी सुन्दर कल्पनाओं शब्द माधुर्यता और उत्कृष्ट भावनाओं से विभूषितकर उसपर

मौलिकता का रङ्ग चढ़ा दिया है इसमें उन्होंने अपनी प्रौढ़ काव्य प्रतिभा का अपूर्व अभिनय प्रदर्शित किया है।

प्रत्येक शब्द में प्रभाव और नवीनता है भाषा में कहीं भी जरा सी भी शिथिलता नहीं आने पाई है। मानो कवि का हृदय सरस शब्दों का कोष ही था। शब्दों का चुनाव और उसकी योजना इतने सुन्दर रूप से की है कि छन्द को पढ़ते समय अपूर्व आह्लाद और आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रत्येक पद्य में अनुप्रास की सुन्दर छटा है जिससे विषय में एक नवीन जीवन सा आ गया है अनूठी उक्तिएं उपमाओं और ध्वनि का मनोहर संयोजन है प्रत्येक उपमा नवीन भावोद्योतक और हृदय ग्राही है उक्तियों के समावेश ने तो वर्णनीय विषय को दर्पण की समान स्पष्ट कर दिया है।

नाटक समयसार के कुछ पद्यों को यहाँ उद्धत किया जा रहा है। ग्रन्थ की संपूर्ण रचना श्रेष्ट काव्य के गुणों से ओत प्रोत है जिस पद्य को देखते हैं जी चाहता है उसी को उद्धृत करलें परन्तु इतना स्थान नहीं है इसलिए यहाँ थोड़े से छन्दों को उद्धृत कर कविवर की मनोहर काव्य रचना का परिचय कराया जाता है जिन पाठकों की इच्छा अधिक बलवती हो उन्हें उक्त ग्रन्थ का पाठकर कविवर के अपूर्व काव्यरस का पान करना चाहिए।

नाटक समयसार में ३१० दोहा सोरठा, दो सै तेतालीस सवैया इकतीसा, ८६ चौपाई ६० सवैया तेईसा बीस छप्पय अठारह कवित्त ७ अडिल्ल और चार कुन्डलिए हैं सब मिलकर सात सै सत्ताइस छन्द हैं।

यह ग्रन्थ सं० १६९३ के आश्विन मास शुक्ल पक्ष त्रयोदशी रविवार के दिन शाहजहाँ बादशाह के शासनकाल में आगरे में समाप्त हुआ है।

नाटक समयसार

मंगलाचरण

प्रथम मंगलाचरण का यह पद्य बड़ा ही सरल और सुन्दर है इसमें केवल शब्दों की ही सुन्दरता नहीं है किन्तु भावों की मनोहर छटा और भगवान पार्श्वनाथ के उत्कृष्ठ गुणों का सुन्दर विश्लेषण है। अपने इष्ट के वास्तविक गुणों का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है।

करम भरम जग तिमिर हरन खग,
उरग लखन पग शिव मग दरसि।
निरखत नयन भविक जल बरसत,
हरषत अमित भविक जन सरसि॥
मदन कदन जित परम धरम हित,
सुमरत भगत भगत सब डरसि।
सजल जलदतन मुकुट सपतफन,
कमठ दलन जिन नमत बनरसि॥

जो सारे जग में फैले हुए कर्मों के भ्रमजाल अंधकार का मद भंजन करने के लिए प्रतापी सूर्य के समान हैं। मोक्ष पंथ को दिखलाने वाले हैं और जिनके चरण सर्प के चिह्न से चिह्नित हैं। जिनके श्याम शरीर को देखते ही भक्तजनों के नेत्रों से आनन्द अश्रुओं की वर्षा होती है और हृदय सरोवर लहराने लगता है।

जो दुष्ट मदन मद को चकनाचूर करने वाले हैं, महान हितकर धर्म का संदेश सुनाने वाले हैं और जिनका स्मरण करते ही भक्तों के सारे भय डरकर भाग जाते हैं उन जल से पूर्ण श्याम मेघों जैसे शरीर वाले और सर्प का फन ही जिनका मुकुट है ऐसे कमठ दैत्य के उपसर्गो पर विजय पाने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान को मैं बनारसीदास नमस्कार करता हूँ।

इष्ट प्रार्थना

इस पद्य में कविवर ने अपने इष्टदेव के प्रभाव का बड़े सुन्दर अलंकारिक ढंग से वर्णन किया है। शब्द अत्यन्त मधुर और उक्तिएँ बहुत ही सरस हैं।

जिन्हके वचन उर धारत युगल नाग,
भये धरणेन्द्र पद्मावती पलक में।
जिन्हके नाम महिमा सों कुधातु कनक करै,
पारस पाखान नामी भयो है खलक में॥
जिन्हकी जनमपुरी नाम के प्रभाव हम,
आपनो स्वरूप लख्यो भान सों भलक में।
तेई प्रभु पारस महारस के दाता अब,
दीजे मोहि साता दृग-लीला की ललक में॥

जिनके वचनों को हृदय में धारण करते ही नाग और नागनी का जोड़ा एक क्षण में ही धरणेन्द्र और पद्मावती के उत्तम देव पद को प्राप्त हुआ।

लोहे जैसी कुधातु को सोना बना देने वाला पारस पत्थर जिनके नाम के प्रभाव से ही संसार में प्रसिद्ध हुआ है।

जिनकी जन्म नगरी बनारसी के नाम के प्रभाव से ही मैंने अपने आत्म स्वरूप की सूर्य के प्रकाश की तरह निरीक्षण किया है।

वे महा आनन्द रस के देने वाले प्रभु पार्श्वनाथ मुझे क्षण मात्र में ही सुख शांति प्रदान करें।

कविवर की कितनी सुन्दर सूझ है। पारस पत्थर जो संसार में इतना प्रसिद्ध हुआ है उसमें भगवान् पारसनाथ के नाम का ही प्रभाव है। अंतिम पद 'द्रग लीला की ललक में' बड़ा ही सुन्दर और सरस है।

समदृष्टी की प्रशंसा

सज्जन सम-दृष्टी की प्रशंसा करते हुए कविवर कहते हैं।

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट शीतल चित्त भयो जिम चंदन।
केलि करें शिव मारग में जग मांहि जिनेश्वर के लघु नंदन॥
सत्य स्वरूप सदा जिन्ह के प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन।
शांत दशा तिनकी पहिचान करै कर जोरि बनारसी वंदन॥

जिनके मन मंदिर में आत्म-विज्ञान का प्रकाश जागृत हुआ है और जिनका हृदय चन्दन के समान शीतल हो गया है। जो मोक्ष-महल के मार्ग में क्रीड़ा करते हैं और जो संसार में-जिनेन्द्र देव के लघु पुत्र अर्थात् युवराज के समान हैं। असत्य (मिथ्या श्रृद्धान) का नष्ट करने वाले 'सत्य-स्वरूप' से जिनकी आत्मा प्रकाशमान हुई है ऐसे समदृष्टी भव्य आत्माओं की शांति दशा को देखकर मैं बनारसीदास हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

कविवर का हृदय कितना विशाल और उदार है उन्हें किसी पक्ष का मोह नहीं है उनका उपास्य वही है जिसके हृदय में आत्म विज्ञान की तरंगें लहराती हैं। कविवर की 'जिनेश्वर के लघु नंदन' उक्ति बड़ी ही सरस और गंभीर है। शब्दों की सरलता और भावों की गंभीरता प्रशंसनीय है।

मिथ्या-दृष्टी का वर्णन

अब जरा पक्षपाती मिथ्यादृष्टी के हृदय का भी निरीक्षण कीजिए।

धरम न जानत वखानत भरम रूप,
ठौर ठौर ठानत लड़ाई पक्षपात की।
भूल्यो अभिमान में न पाँव धरे धरनी में,
हिरदे में करनी विचारे उतपात की।
फिरै डाँवाडोल सो करम के कलोलनि में,
ह्वै रही अवस्था ज्यूँ वभूल्या कैसे पातकी॥
जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी,
ऐसो ब्रह्म-घाती है मिथ्याती महापातकी।

जो धर्म को बिलकुल ही नहीं जानता किन्तु जनता को धोखे में डालने के लिए मिथ्या भ्रम रूप वर्णन करता है और हर जगह पक्षपात की लड़ाई लड़ाता रहता है। जो घमंड के नशे में मस्त होकर कभी जमीन पर पैर नहीं रखता और अपने हृदय में हमेशा उत्पात की ही बात सोचा करता है। कर्म तरंगों में पड़कर जिसका मन तूफान में पड़े हुए पत्ते की तरह इधर उधर डोलता है। जिसकी छाती पाप की आग से तप रही हैं ऐसा महा दुष्ट

कुटिल, अपनी आत्मा का घात करनेवाला मिथ्यादृष्टी महा पातकी है।

इसमें पातकी शब्द का सुन्दर प्रास मिलाया गया है।

कवि की असमर्थता

कविवर अपनी असमर्थता किन शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं इसका भी थोड़ा नमूना देख लीजिए।

जैसे कोऊ मूरख महा-समुद्र तरिवे को,
भुजानि सो उद्यत भयो है तजि नावरो।
जैसे गिरि ऊपर विरख फल तोरिवे को,
वामन पुरुप कोऊ उमगे उतावरो॥
जैसे जल कुंड में निरखि शशि प्रतिविंव,
ताके गहिवे को कर नीचो करै टावरो।
तैसे मैं अलप बुद्धि नाटक आरंभ कीनो,
गुनी मोही हँसेंगे कहेंगे कोऊ वावरो॥

जिस तरह कोई मनुष्य नाव को छोड़कर हाथों से महा सागर को पार करने का प्रयत्न करता है, कोई वौना पुरुष पहाड़ पर के वृक्ष के फल तोड़ने के लिए बड़े उत्साह से दौड़ता है और कोई वालक जल के कुण्ड में पड़े हुए चन्द्रमा के प्रतिविम्व को पकड़ने के लिए नीचे को हाथ वढ़ाता है उसी तरह मैं भी थोड़ीसी वुद्धि रखने पर नाटक की रचना करना आरम्भ करता हूँ इसे देखकर गुणवान पुरुष मेरी अवश्य ही हँसी करेंगे और कहेंगे कि यह कोई पागल है।

सोने वाला अज्ञानी

अज्ञानी आत्मा किस तरह नींद की खुमारी ले रहा है और भ्रम के स्वप्न में किस तरह भूला हुआ है इसका अलंकार मय वर्णन सुनिए।

काया चित्रसारी में करम पर जंक भारी,
माया की सँवारी सेज चादर कलपना।
शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिए,
मोह की मरोर यहै लोचन को ढपना॥
उदै बल जोर यहै श्वास को शवद घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सपना।
ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहे तिहुँ काल,
धावे भ्रम-जाल में न पावे रूप अपना॥

काया की चित्र शाला में कर्म का पलंग विछाया गया है उस पर माया की सेज सजाकर मिथ्या कल्पना का चादर डाला गया है। उसपर अचेतना की नींद में चेतन सोता है। मोह की मरोड़ नेत्रों का बंद करना है। कर्म के उदय का बल ही श्वास का घोर शब्द है और विषय सुख की दौर ही स्वप्न है।

इस तरह तीनों काल में अज्ञान की निद्रा में मग्न रहकर यह आत्मा भ्रम जाल में ही दौड़ता है कभी अपने स्वरूप को नहीं पाता है।

अज्ञानी मनुष्य की दशा

संसार के अज्ञानी अभिमानी मनुष्यों की दुर्दशा का कविवर ने बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है।

रूप की न झांक हिए करम को डांक पिये,
ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे घन में।
लोचन की ढांक सो न मानें सद्गुरु हांक,
डोले मूढ़ रंक सो निशंक तिहूँपन में॥
टंक एक मांस की डली सी तामें तीन फांक,
तीन को सो आंक लिखि रख्यो कहूँ तनमें।
तासों कहे नांक ताके राखने को करे कांक,
लांक सो खड़ग बांधि बाँक धरे मन में॥

हृदय में आत्म रूप की झलक नहीं है, कर्म का तीक्ष्ण ज़हर पिये हुए है, ज्ञान का प्रकाश इस तरह दबा हुआ है जैसे बादलों में सूर्य दब जाता है। विवेक के नेत्र बन्द हो रहे हैं जिससे सद्गुरु की पुकार को नहीं सुनता। अपनी आत्म शक्ति खोकर यह अज्ञानी प्राणी तीनों काल में भिखारी की तरह निडर होकर डोलता है।

मांस के एक टुकड़े में तीन फांकें बनी हुई हैं मानो किसी ने शरीर में तीन का अंक लिख रक्खा है उसको नाक कहता है और उसके रखने के लिए अनेक तरह के छल कपट करता है। और कमर से तलवार बांधकर मन में घमंड रखता है।

अज्ञानी की अवस्थाएं

इसमें कविवर अज्ञानी की दशा और ज्ञान की महिमा का वर्णन सुन्दर उपमाओं द्वारा कहते हैं आप इसे सुनिए और आपको जो पसंद हो उसे ग्रहण कीजिए।

काँच बाधै शिरसों सुमणि बाँधे पाँयनि सो,
जाने न गँवार कैसा मणि केसा काँच है।
योंही मूढ़ झूठ में मगन झूठ ही को दौरे,
झूठ बात माने पै न जाने कहा साँच है॥
मणि को परखि जाने जौहरी जगत माहीं,
सांच की समझ ज्ञान-लोचन की जांच है।
जहां को जुवासी सो तो तहाँ को मरम जाने,
जापे जैसो स्वांग तापे तैसे रूप नाच है॥

मूर्ख मनुष्य काँच को शिर से बाँधता है और हीरे को पैरों में डालता है वह नहीं जानता की मणि क्या है और कांच क्या है। उसी तरह अज्ञानी आत्मा मिथ्या वासनाओं में ही मग्न रहता है उसीको पकड़ने के लिए दौड़ता है, उसीको अपना मानता है वह नहीं जानता कि सत्य कहाँ है।

संसार में जिस तरह जौहरी हीरे की परख जानता है उसी तरह ज्ञान नेत्र ही सत्य की जाँच करते हैं अज्ञानी नहीं।

जो जहाँ का रहने वाला है वह वहाँ का ही भेद जानता है। जिसका जैसा स्वांग होता है वह उसी तरह नाचता है।

अज्ञानी अज्ञान में ही मग्न रहता है और ज्ञानी ज्ञान के प्रकाश में निरीक्षण करता है।

ज्ञान की विजय

अब जरा कर्मों के द्वार रूप बहादुर आश्रव योद्धा के घमंड को चूर करने वाले ज्ञान की वीरता को देखिए।

जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप,
ते ते निज वस करि राखे वल तोरिकै।
महा अभिमानी ऐसो आश्रव अगाध जोधा,
रोपि रण-थंभ ठाड़ो भयो मूँछ मोरि कै ॥
आयो तिहि थानक अचानक परम धाम,
ज्ञान नाम सुभट सवायो वल फोरि कै।
आश्रव पछारयो रण थंभ तोड़ डारयो,
ताहि निरखि वनारसी नमत कर जोरि कै ॥

जिसने संसार के सभी, थावर और जंगम जीवों का घमंड चकनाचूर करके उन्हें अपने आधीन बना रक्खा है।

ऐसा महान अभिमानी आश्रव (कर्मों के आने का दरवाजा) रूप प्रचंड वीर रण थंभ रोप कर और मूँछ मरोड़ कर खड़ा हुआ।

उसी समय उस स्थान पर आत्म ज्ञान नामक वीर सैनिक अपना सवाया वल बढ़ाकर आया।

उसने आश्रव को पछाड़ दिया और रण थंभ तोड़ डाला—उसे देखकर कविवर वनारसीदास हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं।

ज्ञान के आने पर आत्म दशा

ज्ञान के प्रकाश में आते ही ज्ञानी आत्मा की कैसी दशा हो जाती है उसके हृदय में किन विचारों की तरंगें लहराने लगती हैं इसका हृदयग्राही वर्णन सुनिए।

हिरदै हमारे महामोह की विकलताई,
तातें हम करुना न कीनी जीवघातकी।
आप पाप कीने औरनि को उपदेश दीने,
हुती अनुमोदना हमारे याही बात की॥
मन, वच, काया में मगन ह्वै कमायो कर्म,
धाये भ्रमजाल में कहाए हम पातकी।
ज्ञान के उदय तें हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रात की॥

आत्म ज्ञान के अभाव में हमारा हृदय महामोह की विकलता से वेकल था इसीलिए हमने किसी प्राणी के घात करने में कभी जरा भी करुणा नहीं की।

खुद पाप किए, दूसरों को पाप करने का उपदेश दिया और हमारे हृदय में पाप करने वालों की अनुमोदना करने की भावना रही। मन, वचन और काया के खोटे प्रयत्नों में मग्न होकर हमने खोटे कर्मों को कमाया और भ्रमजाल की ओर ही दौड़कर पाप कमाकर हम पापी कहलाए।

अब ज्ञान का उदय होने से हमारी हालत ऐसी हो गई है जैसे सूर्य के उदय होने पर सवेरे की होती है। सूर्य का प्रकाश होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है उसी तरह मेरे हृदय का मोह अंधकार अब दूर हो गया।

ज्ञानी की अवस्था

ज्ञानी आत्मा सभी क्रियाओं को करते हुए भी किस तरह निष्कलंक रहता है इसका अनेक उपमाओं द्वारा बड़े ही मनोहर ढंग से वर्णन किया गया है।

जैसे निशि वासर कमल रहैं पंक ही में,
पंकज कहावैं पै न वाके ढिग पंक है।
जैसे मंत्रवादी विषधर सौं गहावे गात,
मंत्र की शकति वाके विना विष डंक है॥
जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अंग,
पानी में कनक जैसे काई से अटंक है।
तैसे ज्ञानवान नाना भांति करतूत ठानै,
किरिया तैं भिन्न माने यातै निष्कलंक है॥

कमल रात दिन पंक (कीचड़) में ही रहता और पंकज कहलाता है परन्तु वह कीचड़ से सदा ही अलग रहता है।

मंत्रवादी सर्प को अपना शरीर पकड़ाता है परन्तु मंत्र की शक्ति से विष के रहते हुए भी सर्प का डंक निर्विष रहता है।

जीभ चिकनाई को ग्रहण करती है परन्तु वह सदा ही रूखी रहती है पानी में पड़ा हुआ सोना काई से अलग रहता है।

इसी तरह ज्ञानी मनुष्य संसार में अनेक क्रियाओं को करते हुए भी अपने को सभी क्रियाओं से भिन्न मानता है। उन क्रियाओं में मग्न नहीं होता इसलिए सदैव ही निष्कलंक रहता है।

ज्ञानवान का हृदय

आत्म ज्ञानी मनुष्य की दशा कैसी होती है उसकी भावना क्या रहती है इसका वर्णन सुनिये।

जिनकी सुबुद्धि चिमटा सी गुण चूनवे को,
कुकथा के सुनवे को दोऊ कान मदे हैं।

जिन्हके सरल चित्त कोमल वचन बोलें,
सौम्य दृष्टि लिए डोले मोम कैसे गढ़े हैं ॥
जिनके सकति जागी अलखि अराधिवेकों,
परम समाधि साधिवे कों मन वढ़े हैं।
तेई परमार्थी पुनीत नर आठों याम,
राम रस गाढवे को यह पाठ पढ़े हैं ॥

जिनकी सद्बुद्धि गुणों को पकड़ने के लिए चिमटी के समान है और खोटी कथाओं को सुनने के लिए जिनके दोनों कान मढ़े हुए हैं।

जिनका चित्त सरल है जो कोमल वचन बोलते हैं मोम के चित्र की तरह जो समता दृष्टि धारण किए रहते हैं।

जिनके हृदय में आतमा के आराधने की शक्ति पैदा हुई है और आत्म समाधि साधने के लिए जिनका मन बढ़ा हुआ है वही पवित्र, परमार्थी, आत्म ज्ञानी मनुष्य आठों पहर आत्म-रस के स्वाद को पाते हैं और आत्म-ज्ञान का ही पाठ पढ़ते रहते हैं।

ज्ञानी योद्धा का वर्णन

आत्मा के प्रताप का वर्णन करते हुए कविवर उसकी तुलना एक बहादुर योद्धा से करते हैं। इसमें कवि ने सभी दीर्घ अक्षरों का प्रयोग किया।

राणा को सो वाणा लीने आपा साधे थाना चीने,
दाना अंगी नाना रंगी खाना जंगी जोधा है।
माया वेली जेती तेती रेतें में धारेती सेती,

फंदा ही को कंदा खोदे खेती को सो जोधा हैं ॥
वाधा सेती हांता जोरे, राधा सेती तांता जोरे,
वांदी सेती नांता जोरे चांदी को सो सोधा है ।
जाने जाही ताही नीके माने राही पाही पीके,
ठाने वातें डाही ऐसो धारा-वाही बोधा है ॥

ज्ञानी आत्मा महाराणा जैसा बाना सजाए हुए है। वह आत्म राज्य की साधना करता है और अपने राज्य को पहचानता है विशाल ज्ञान अङ्गों वाला अनेक नयों को जानने वाला वह बड़ा बहादुर योद्धा है।

जहाँ जहाँ माया की बेल फैली हुई है उसे खोद डालता है और खेती के किसान की तरह कर्मों के फंदों की जड़ को उखाड़ के फेंक देता है।

वह वाधाओं से युद्ध करता है, सुमति राधिका से स्नेह जोड़ता है कुबुद्धि दासी से सम्बन्ध तोड़ता है और स्वर्णकार की तरह अपना आत्म शोधन करता है।

अपने आत्म-राज्य को प्राप्त कर उसको निश्चय से अपना जानता है और पूर्ण आत्म विश्वास रखता है।

श्रेष्ठ क्रियाओं को करने वाला ऐसा वह धारा-प्रवाही आत्म ज्ञानी है।

ज्ञान कहाँ है?

ज्ञान कहाँ रहता है इसका कविवर वर्णन करते हैं—

भेष में न ज्ञान नहिं ज्ञान गुरु-वर्तन में,
जंत्र मंत्र तंत्र में न ज्ञान की कहानी है।

ग्रन्थ में न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि चातुरी में,
वातनि में ज्ञान नहीं ज्ञान कहा बानी है।
तातैं भेष गुरुता कवित्त ग्रन्थ मंत्र वात,
इनतैं अतीत ज्ञान चेतना निशानी है।
ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान और ठौर कहीं,
जाके घट ज्ञान सोही ज्ञान को निदानी है।

अरे भाई! न तो अनेक तरह के भेषों में ज्ञान है न गुरुपनें में ज्ञान है, और न यंत्र, मंत्र तंत्र में ही ज्ञान की कथा है।

ग्रन्थों में भी ज्ञान नहीं है, न काव्य की चतुरता में ज्ञान है और न वातों में ही कहीं ज्ञान रक्खा है।

भेष, गुरुता, यंत्र, मंत्र, ग्रन्थ और काव्यकला से अलग ज्ञान को तो चेतना ही निशानी है।

ज्ञान में भी ज्ञान नहीं है और न ज्ञान किसी दूसरी जगह है जिसके घट में आत्म ज्ञान है बस वही ज्ञान का स्वामी है।

कविवर ने निश्चय नय ही अपेक्षा से आत्म ज्ञान का वर्णन किया है। वास्तव में ज्ञान तो अपने आत्मा में ही है उसे सचा आत्म शृद्धानी स्वयं ही प्राप्त करता है।

ज्ञानी विश्वनाथ

आत्म ज्ञानी ही विश्वनाथ है। कैसे है। सुनिए।

भेद ज्ञान आरा सों दुफारा करे ज्ञानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे।

अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे,
करम भरम का खजाना खोलि खरचै ॥
यों ही मोक्ष मग धावै केवल निकट आवे,
पूरण समाधि जहाँ परम को परचै ।
भयो निरदोर याहि करनो न कछु और,
ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचे ॥

आत्म ज्ञानी भेद ज्ञान (आत्म रहस्य) के आरे से चीर-कर आत्मा और कर्म दोनों की धाराओं को अलग अलग करता है। आत्मा के अनुभव का अभ्यास करके श्रेष्ठ आत्म धर्म को ग्रहण करता है और कर्मों के भ्रम का खजाना खोलकर उसे लुटा देता है। इस तरह मोक्ष के रास्ते पर चलता है जिससे पूर्ण ज्ञान का प्रकाश पास आता है। फिर पूर्ण समाधि में मग्न होकर शुद्धात्मा को प्राप्त करता है तब संसार के आवागमन से रहित होकर कृत-कृत्य हो जाता है ऐसे तीन लोक के स्वामी ज्ञानी विश्वनाथ की बनारसीदास पूजा करते हैं।

विश्वनाथ का कितना मनोरम वर्णन किया है और उसकी प्राप्ति का विवेचन कितना आकर्षक और हृदय ग्राही है।

ज्ञान, क्रिया की एकता

अकेला ज्ञान पंगु है और अकेली क्रिया अंधी है दोनों मुक्ति के साधक कैसे होते हैं सो सुनिए।

यथा अंध के कंध पर, चढ़े पंगु नर कोय।
याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिल दोय ॥

जहाँ ज्ञान क्रिया मिले, तहाँ मोक्ष मग सोय।
वह जाने पद को मरम, वह पद में थिर होय॥

जिस तरह लगड़ा, नेत्र हीन मनुष्य के कंधे पर चढ़कर अपने नेत्र और अंधे के पैरों की सहायता से दोनों निःशंक रूप से मार्ग के पथिक बन जाते हैं। उसी तरह जहाँ ज्ञान और आचरण दोनों मिल जाते हैं वहाँ मोक्ष के मार्ग पर चलना होता है।

ज्ञान आत्म रहस्य को जानता है और क्रिया उसमें स्थिर हो जाती है तब मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

संसार की संपत्ति कैसी है ?

संसार का वैभव कैसा है और संसारी जीव उस पर किस तरह मुग्ध हो रहे हैं इसके वर्णन में कविवर ने बड़ी मनोहर उक्तियों का प्रयोग किया है।

जासूं तू कहत यह संपदा हमारी सो तो,
साधुनि ये डारी ऐसे जैसे नाक सिनकी।
जासूं तू कहत हम पुन्य जोग पाई सो तो,
नरक की साई है बढ़ाई डेढ़ दिन की॥
घेरा मांहि परयो तू विचारे सुख आंखिन को,
माँखिन के चूटत मिठाई जैसे भिनकी।
ऐते पर होइ न उदासी जगवासी जीव,
जग में असाता है न साता एक छिनकी॥

हे भाई! जिसको तू कहता है कि यह मेरी संपत्ति है। उसे साधुओं ने इस तरह फेंक दी है जैसे नाक को छिनक देते हैं। जिसे तू कहता है कि मैंने बड़े पुण्य के योग से पाई है वह तो नर्क को ले जाने वाली केवल अढ़ाई दिन की ही है।

इसके घेरे में पड़ा हुआ इसे देख देखकर तू अपनी आँखें ठंडी करके अपने को सुखी मानता है और उसके लिए इस तरह दौड़ता है जैसे कि मिठाष्ट के छिटकते ही मक्खियाँ भिनकती हैं। यह तेरी बड़ी मूर्खता है।

हे भाई! इस संसार में दुःख ही दुःख है एक क्षण के लिये भी कहीं शान्ति का ठिकाना नहीं है इतने पर भी संसार के रहने वाले प्राणी इससे उदास नहीं होते यह बड़े आश्चर्य की बात है।

संसारी प्राणी कैसे हैं

संसारी जीव कैसे हैं उनकी स्थिति कैसी है इसका कविवर ने बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है।

जगत में डोलैं जगवासी नर रूप धर,
प्रेत कैसे दीप कींधो रेत कैसे धूहे हैं।
दीसे पट भूषण आडंवर सो नीके फिर,
फीके छिन मांहि सांझ अंवर ज्यों सूहे हैं॥
मोह के अनल दगे माया की मनीसों पगे,
डाभ कि अनीसों लगे ऊस कैसे फूहे हैं।
धरम की बूझि नांहि उरझे भरम मांहि,
नाचि नाचि मरि जांहि मरी कैसे चूहे है॥

संसारी प्राणी मनुष्य का रूप धारणकर संसार में डोलते हैं। वे क्षण में बुझ जाने वाले प्रेत के दिए और रेत के टीले हैं।

वस्त्राभूषण के आडंबर से वे सुन्दर दिखते हैं परन्तु एक क्षण में ही फीके पड़ जाने वाले संध्या के बादलों ही की तरह क्षण भंगुर हैं।

मोह की आग से दगे हुए माया के अहँकार में फंसे हुए डाभ की अनी के ऊपर पड़े हुए ओस जैसे बिन्दु हैं।

जिनको धर्म की कुछ परवाह नहीं है और जो भ्रम में ही उलझे हुए हैं वे मरी जैसे चूहों की तरह संसार में नाच नाचकर मृत्यु को प्राप्त हो जायंगे।

शरीर का स्वरूप

ऊपर से सुन्दर दिखने वाले शरीर के सच्चे स्वरूप का दिग्दर्शन कीजिए।

ठौर ठौर रकति के कुण्ड केसनि के झुण्ड,
हाड़नि सों भरी जैसे थरी है चुरेल की।
थोरे से धक्का लगे ऐसे फट जाय मानों,
कागद की पूरी कीधो चादर है चैल की॥
सूचे भ्रम वानि ठानि मूढ़निसों पहिचानि,
करे सुख हानि अरु खानि बदफैल की।
ऐसी देह याही के सनेह याकी संगति सों,
हो रही हमारी दशा कोल्हू कैसे बैल की॥

जगह जगह रक्त के कुंड हैं। उसपर वालों के झुंड खड़े हुये हैं। हाड़ों से भरा हुआ यह देह चुड़ैल के स्थान की तरह भयानक है। थोड़ासा धक्का लगते ही इस तरह फट जाती है मानों कागज की पूड़ी अथवा जीर्ण कपड़े की चादर ही हो। यह देह भ्रम की बातें ही सुझाती है, मूर्खों से प्रेम कराकर सुख को नष्ट कराती है और कुकर्मों को भंडार है इसके स्नेह और संगति से हमारी हालत कोल्हू के वैल की तरह हो रही है।

कोल्हू के वैल की दशा

कोल्हू के वैल बने हुए संसारी मनुष्यों की दुर्दशा का चित्र देखिए।

पाटी बाँधी लोचनि सों सकुँचे दबोचनि सों,
कोचनी के सोचसों निवेदे खेद तनको।
धाइवोही धंधा अरु कंधा मांहि लग्यो जोत,
बार बार आरत ह्वै कायर ह्वै मन को॥
भूख सहै प्यास सहै दुर्जन को त्रास सहै,
थिरता न गहे न उसास लहे छिनको।
पराधीन घूमे जैसे कोल्हू को कमेरो बैल,
तैसो ही स्वभाव भैया जग वासी जनको॥

आँखों में पट्टी बंधी हुई है। दबाव के कारण सभी अंग संकुचित हो रहे हैं, कोंचनी के सोच से जिसका मन सदैव ही खेदित रहता है।

रात्रि दिन चलना ही जिसका काम है जिसके कंधों पर जोत लगा हुआ है और जो कायर मन होकर वार वार ही मार की तकलीफ सहन करता है।

भूख प्यास और दुष्ट जनों के त्रास को सहता हुआ एक क्षण के लिए भी कभी साँस नहीं ले पाता और न स्थिरता पाता है। इस तरह जैसे कोल्हू का कमाऊ बैल पराधीन घूमता है उसी तरह यह संसारी प्राणी भी कर्मों के कोल्हू से बँधे हुए बैल की तरह घूमते रहते हैं।

अपराधी कौन है

जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव॥

जिसके हृदय में समता नहीं है जो ममत्व में ही सदा फँसा हुआ है और अपने आत्म राम को नहीं जानता वह जीव महा अपराधी है।

आत्म ज्ञानी की एकता

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुनन को दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहिं कोइ॥

आत्म रस और आत्म रसिक कहने सुनने को तो दो हैं परन्तु जिस समय समाधि प्रगट होती है उस समय दोनों में कोई दुविधा नहीं रहती दोनों एक ही हो जाते हैं।

संसार में क्या श्रेष्ठ है

संसारी मनुष्य जिन पदार्थों को श्रेष्ठ मानता है उनके अंतरंग में क्या रहस्य भरा हुआ है इसका वर्णन कविवर कितना सुन्दर करते हैं।

हांसी में विषाद बसे विद्या में विवाद बसे,
काया में मरण गुरु वर्तन में हीनता।
शुचि में गिलानि बसे प्रापती में हानि बसे,
जय में हारि सुन्दर दशा में छवि छीनता॥
रोग बसे भोग में संयोग में वियोग बसे,
गुण में गरब बसे सेवा मांहि दीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साता की सहेली है अकेली उदासीनता॥

हँसी में विषाद (खेद) विद्या में विवाद, काया में मरण और बड़ी-बड़ी बातों में हीनता छुपी रहती है।

शुद्धि में ग्लानि, लाभ में हानि, जय में हार और सुन्दरता में कुरूपता की भयंकर कल्पनाएं भरी रहती हैं।

भोग में रोग, संयोग में वियोग, गुण में घमंड और सेवा में दीनता की भावना समाई रहती है।

इसी तरह संसार की ओर जितनी साता पूर्ण सामग्रिएँ हैं वे सभी असाता रस से सनी हुई हैं। सच्ची शान्ति की सहेली तो केवल उदासीनता ही है। और संसार में वही सर्व श्रेष्ठ है।

आत्म जागृति

आत्मा को सम्बोधित करते हुए कविवर कहते हैं—

चेतन जी तुम जागि विलोकहु,
लागि रहे कहां माया के तांई ॥
आये कहीसों कहीं तुम जाहुगे,
माया रहेगी जहाँ के तहांई ॥
माया तुम्हारी न जाति न पाँति न,
वंश की वेलि न अंश की झांई ॥
दासी किये विन लातनि मारत,
ऐसी अनीति न कीजे गुसांई ॥५॥

हे चेतन जी तुम जागो और देखो। अरे! इस माया के पीछे क्यों लग रहे हो।

तुम न मालूम कहाँ से आए हो और कहाँ जाओगे परन्तु यह माया न तुम्हारे साथ आई है और न जायगी। यह तो जहाँ की तहाँ ही रहेगी।

भाई! यह माया न तो तुम्हारी जाति पांति की है न— तुम्हारे वंश की वेल है और न तुम्हारे अंश की इसमें कुछ झलक ही है।

इसे दासी बनाकर न रखने से यह तुम्हें लातों से पीटती है। हे चेतन स्वामी ऐसी अनीति क्यों सहन करते हैं। इस माया की गुलामी को छोड़ दो।

आत्मा की लीलाएं

कर्मों की संगति से चेतन (आत्मा) क्या २ लीलाएँ करता है इसका सुन्दर वर्णन सुनिये:—

एक में अनेक है अनेक ही में एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है।
करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजे न उपजत मरे न मरत है॥
बोलत विचारत न बोले न विचारै कछू,
भेख को न भाजन पै भेख को धरत है।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतन की संगति सों,
उलट पलट नट बाजी सी करत है॥

निश्चय रूप से एक होने पर भी जो व्यवहार में अनेक रूप है और अनेक होने पर भी एक रूप है परन्तु वास्तव में एक रूप है अथवा अनेक रूप है यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

कर्ता भी है और अकर्ता भी है। कर्मफल का भोगनेवाला भी है और निश्चय से न कुछ करता है न भोगता है। व्यवहार से पैदा होता और मरता है किन्तु निश्चय से न तो पैदा होता है न मरता ही है। व्यवहार रूप से बोलता विचारता है परन्तु वास्तव में न तो कुछ बोलता है न विचारता है। भेष का धारक न होने पर भी अनेक भेषों को धारण करता है।

इस तरह चेतन प्रभु अचेतन की संगति से उलट-पलट कर नटबाजी-सी करता है।

एक आत्मा की अनेकता

आत्मा में कर्म के संबंध से किस प्रकार अनेक तरह के भाव उत्पन्न होते हैं इसका तुलनात्मक वर्णन सुनिए।

जैसे महीमंडल में नदी को प्रवाह एक,
ताही में अनेक भांति नीर की ढरनि है।
पाथर के जोर तहां धारकी मरोर होत,
कांकर की खानि तहाँ झागकी झरनि है॥
पौन की झकोर तहाँ चंचल तरंग उठै,
भूमि की निचानि तहाँ भौंर की परनि है।
तैसो एक आत्मा अनंत रस पुद्गल,
दोहू के संयोग में विभावकी भरनि है॥

जिस तरह पृथ्वी पर नदी का प्रवाह तो एक ही परन्तु उसमें अनेक तरह से पानी का वहाव होता है।

जहाँ पत्थरों का जोर होता है वहाँ धार में मरोड़ होती है, जहाँ कंकड़ होते हैं वहाँ झाग पड़ते हैं, जहाँ हवा का जोर पड़ता है वहाँ चंचल तरंगे उठती हैं और जहाँ जमीन नीची होती है वहाँ भौंर पड़ता है। इसी तरह एक आत्मा में पुद्गल के अनंत रसों के कारण अनेक प्रकार के विभाव उत्पन्न होते हैं।

ईश्वर कहाँ है

ईश्वर की प्राप्ति के लिये संसारी मनुष्य इधर उधर भटकते रहते हैं उनके लिये कविवर ईश्वर का स्थान बतलाते हैं। बड़ा सुन्दर वर्णन है।

केई उदास रहे प्रभु कारन, केई कहीं उठि जाँहि कहीं के।
केई प्रणाम करे घड़ मूरति, केई पहार चढ़े चढ़ि छीके।
केई कहें आसमान के ऊपरि, केइ कहें प्रभु हेठ जमी के।
मेरो धनी नहीं दूर दिशांतर, मोहि में है मोहि सूझत नीके॥

कोई ईश्वर के पाने के लिये संसार से उदासीन होकर रहते हैं। कोई कहीं इधर उधर जंगलों में घूमते हैं। कोई मूर्ति बनाकर प्रणाम करते हैं और कोई पहाड़ की चोटियों पर चढ़ते हैं। कोई कहते हैं कि ईश्वर आकाश के ऊपर है और कोई कहते हैं कि पाताल लोक में है किन्तु मेरा स्वामी तो कहीं दूर देश विदेश में नहीं है वह तो मेरे अन्दर ही है मुझे वह अच्छी तरह से दिखता है।

मन की दौड़

मन की क्या ही विचित्र दौड़ है वह किस तरह से छलांगें मारता है इसके वर्णन में कविवर ने बड़ी सफलता प्राप्त की है।

छिन में प्रवीण छिन ही में माया सों मलीन,
छिनक में दीन छिन मांहि जैसो शक्र है।
लिए दौर धूप छिन छिन में अनन्त रूप,
कोलाहल ठानत मथानी को सो तक्र है॥
नट कोसो थार कींधो हार है रहाँट कैसो,
नदी को सो भौंर कि कुम्हार कैसो चक्र है।
ऐसो मन भ्रामक सुथिर आज कैसे होय,
आदि ही को चंचल अनादि ही को वक्र है॥

मन एक क्षण में ज्ञानवान और क्षण भर में ही माया से मलिन हो जाता है। वह क्षण भर में ही कभी तो दीन और कभी क्षण भर में ही इन्द्र जैसा वैभवशाली बन जाता है।

एक क्षण में ही अनन्त रूप धारण करता है।

और क्षण भर में ही सारे संसार में चक्कर लगा आता है मथानी के दही की तरह सदा ही उछलता रहता है।

नट की थाली, रहेंट की घड़ियें, नदी के भौंर और कुम्हार के चक्र की तरह यह मन निरंतर ही भटकता रहता है यह आज स्थिर कैसे हो सकता है यह तो प्रारम्भ से ही चंचल और अनादि काल का ही कुटिल है।

चौदह रत्नों की कल्पना

आप क्या चौदह रत्नों को प्राप्त करना चाहते हैं। अच्छा तब प्राप्त कीजिए वह कहाँ है इसका वर्णन सुनिए।

लक्ष्मी सुबुद्धि, अनुभूति कौस्तुभ मणि,
वैराग्य कल्पवृक्ष शंख सुवचन है।
ऐरावत उद्यम, प्रतीति रंभा उदै विष,
कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है।
ध्यान चाप प्रेम रीति मदिरा विवेक वैद्य,
शुच भाव चन्द्रमा तुरंग रूप मन है।
चौदह रतन ये प्रगट होंय जहाँ तहाँ,
ज्ञान के उद्योत घट सिंधु को मथन है।

सुबुद्धि लक्ष्मी है, आत्म अनुभव कौस्तुभ मणि, वैराग्य कल्पवृक्ष और शुभ उपदेश ही शंख है।

उद्यम ऐरावत हाथी, आत्म प्रतीति रंभा, कर्मोदय विष, निर्जरा कामधेनु और आत्म आनंद ही अमृत है।

ध्यान धनुष, आत्म प्रेम मदिरा, विवेक वैद्य, शुद्ध भाव चन्द्रमा और मन चंचल घोड़ा है।

इस तरह हृदय के मथन से ज्ञान का प्रकाश होने पर ये चौदह रत्न प्रकट होते हैं।

सप्त व्यसनों का सच्चा स्वरूप

कविवर द्वारा किया हुआ सप्त व्यसनों का सुन्दर अध्यात्मिक विवेचन सुनिए और उनके त्यागने का प्रयत्न कीजिए।

अशुभ में हार शुभ जीति यह द्यूत कर्म,
देह की मगनताई यहै मांस भखिवो।
मोह की गहल सों अजान यहै सुरापान,
कुमती की रीति गणिका को रस चाखिवो॥
निर्दय ह्वै प्राण घात करवो यहै सिकार,
परनारी संग पर बुद्धि को परखिवो।
प्यार सों पराई सौंज गहिवे की चाह चोरी,
एई सातों व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो॥

अशुभ में हार और शुभ कर्म के उदय होने पर जीत मानना यही जुआ है। शरीर में मग्न रहना यही मांस भक्षण है। मोह के नशे में मस्त होकर अज्ञान रहना ही शराब का पीना है और कुमति के रङ्ग में मग्न रहना ही वेश्या सेवन है।

निर्दय होकर आत्मघात करना ही शिकार है। पर बुद्धि को ग्रहण करना पर नारी सेवन है और पर वस्तु काम, क्रोध आदि के ग्रहण करने की इच्छा करना ही चोरी है। इन्हीं सप्त व्यसनों का त्याग करने से ही आत्मा की पहचान होती है।

कुमति कुबजा का स्वरूप

कुबुद्धि की करतूतों का वर्णन करते हुए कविवर उसे किस प्रकार कुबजा सिद्ध करते हैं इसे सुनिए।

कुटिला कुरूप अङ्ग लगी है पराए संग,
अपनो प्रमाण करि आपही विकाई है।
गहै गति अंध की सी, सकति कमंध की सी,
बंधको बढ़ाव करै धंध ही में धाई है॥
रांड की सी रीत लिए मांड की सी मतवारी,
सांड ज्यों स्वछंद डोले भांड की सी जाई है।
घर का न जाने भेद करे पराधीन खेद,
यातें दुरबुद्धी दासी कुब्जा कहाई है॥

कुरूपिणी, कुमति, कुटिला पराये (शरीर के) संग ही लगी हुई है और अपने द्वारा खोटी बुद्धि को रखने वाली खुद

ही दूसरों के हाथ बिकी है। वह अंधे मनुष्य की तरह चलती है और कामांध पुरुष जैसी उसकी शक्ति है। कर्म बंध को बढ़ाती है और संसार के झूठे धंधों की ओर दौड़ने वाली है।

वह वेश्या सी स्वच्छन्द फिरती है और भांड की पुत्री की तरह लज्जा हीन है।

इस तरह आत्मा का भेद न जानने वाली, दूसरों (कर्म) के आधीन रहकर खेद करने वाली कुमति दासी कुबजा कहलाती है।

कुबुद्धि का परिणाम

कुबुद्धि के वश में हुआ मनुष्य किस तरह की क्रियायें करता है इसका मनोहर चित्र देखिए।

काया से विचारे प्रीति, माया ही में हारि जीति,
लिए हठ रीति जैसे हारिल की लकरी।
चुंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि,
त्योंहीं पाँय गाड़े पै न छाड़े टेक पकरी॥
मोह की मरोर सों भरम को न ठोर पावे,
धावे चहुँ ओर ज्यों बढ़ावे जाल मकरी।
ऐसे दुरबुद्धि भूली माया झरोखे झूली,
फूली फिरै ममता जँजीरन सों जकरी॥

काया से ही प्रीति करता है और माया के जाने आने में ही हार जीत समझता है। मिथ्या हठ को ही पकड़े रहता है

जिस तरह हारिल पक्षी लकड़ी को दबाए रहता है और जिस तरह चुंगुल के जोर से गोह भूमि को पकड़े रहती है उसी तरह अपनी हठ को नहीं छोड़ता।

मोह की मरोड़ से जिसे भ्रम का पता नहीं लगता और जिस तरह मकड़ी जाल को बढ़ाती है उसी तरह सारे संसार में दौड़ लगाता फिरता है।

इस तरह ममता की जंजीरों से जकड़ी हुई माया के झरोखों में झूली हुई दुर्बुद्धि फूली हुई फिरती है।

सुमति राधिका

सुमति राधिका का वर्णन कविवर कितने मनोहर ढंग से करते हैं।

रूप की रसीली भ्रम कुलप की कीली,
शील सुधा के समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है।
प्राची ज्ञान भान की अजाची है निदान की,
सुराची निरवाची ठौर सांची ठकुराई है।
धाम की खबरदार राम की रमनहार,
राधा रस पंथनि में ग्रन्थनि में गाई है।
संतन की मानी निरवानी रूप की निसानी,
यातैं सद्बुद्धि रानी राधिका कहाई है।

सुमति रानी रूप के रस से भरी हुई भ्रम ताले को खोलने की चाबी, शील रूपी सुधा के समुद्र के कुंड की सील के समान सुख देने वा— है।

वह ज्ञान सूर्य को उत्पन्न करने के लिये पूर्व दिशा है। सांसारिक सुखों की याचना न करने वाली आत्म-स्थल में रमने वाली सच्ची विभूति है।

आत्म-धन की रक्षा करने वाली आत्मा में मग्न होने वाली जिसे रस के पंथ में और ग्रंथों में राधिका माना गया है ऐसी संतों की मानी हुई मुक्ति प्रदान करने वाली शोभा की निशानी राधिका सुमति रानी है।

नवरसों के पात्र

नवरसों के पात्रों की सुन्दर व्याख्या करते हुए कविवर कहते हैं।

शोभा में श्रृंगार वसे वीर पुरुषारथ में,
कोमल हिये में करुणा रस वखानिये।
आनंद में हास्य रुन्ड मुन्ड में विराजे रुद्र,
वीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये।
चिंता में भयानक अथाहता में अद्भुत,
माया की अरुचि तामें शांत रस मानिये।
येई नव रस भव रूप येई भाव रूप,
इनको विलक्षण सुदृष्टि जगें जानिये।

शोभा में शृङ्गार रस, पुरुपार्थ में वीर रस, और कोमल हृदय में करुणा रस निवास करता है।

आनन्द में हास्य, रुन्ड मुन्डों में रौद्र, और ग्लानि मे वीभत्स रस रहता है।

चिन्ता में भयानक, अथाह पदार्थ में अद्भुत, और माया की अरुचि में शान्ति रस रमता है।

यही नव रस भाव रूप हैं और यही भव रूप अर्थात् संसार के कारण हैं।

आत्म ज्ञान जगने पर इनकी विलक्षणता जानी जाती है।

नव रस कल्पना

आत्म ज्ञान के द्वारा नव रसों में उत्पन्न हुई विलक्षणता का वर्णन कवि की मनोहर कल्पना द्वारा सुनिए।

गुण विचार शृंगार, वीर उद्यम उदार रुख।
करुणा रस सम रीति, हास्य हिरदे उच्छाह सुख॥
अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरते तिहि थानक।
तन विलक्ष वीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक॥
अद्भुत अनंत बल चिंतवन, शांत सहज वैराग्य ध्रुव।
नवरस विलास परकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव॥

आत्मा के सुन्दर गुणों का विचार करना शृंगार रस, आत्मा के उदार गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना वीर रस, और समभाव ही करुणा रस है।

आत्म सुख की तरंगे उमड़ना हास्य रस, अष्ट कर्मों को पछाड़ना रौद्र रस और शरीर की विलक्षण दशा का निरीक्षण वीभत्स रस है।

संसार की कष्ट दशा का निरीक्षण भयानक रस, आत्मा के अनंत बल का चिन्तन अद्भुत रस और स्वाभाविक निश्चल वैराग्य शांत रस है।

इस प्रकार नव रस के विलास का प्रकाश तभी होता है जब हृदय में आत्म-बोध प्रकट होता है।

मूर्ति की महिमा

मूर्ति के द्वारा आत्म सिद्धि की प्राप्ति बतलाते हुए कविवर उसकी उपयोगिता को किस प्रकार सिद्ध करते हैं।

जाके मुख दरस सों भगति के नैननि कों,
थिरता की बानि बढ़े चंचलता विनसी।
मुद्रा देखें केवली की मुद्रा याद आवे जहाँ,
जाके आगे इन्द्र की विभूति दीसै तिनसी॥
जाको जस जंपत प्रकाश जगे हिरदे में,
सोई शुद्ध मति धरे हुति जो मलिन सी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी सुछवि विद्यमान जिन सी॥

जिनके मुंह का दर्शन करने से भक्त के नेत्रों में स्थिरता बढ़ती है और चंचलता नष्ट हो जाती है।

जिनकी मुद्रा को देखकर पूर्ण ज्ञानी सर्वज्ञ की मुद्रा का स्मरण होता है और जिनके समोशरण की विभूति के साम्हने इन्द्र की विभूति भी तिनके के समान जान पड़ती है।

जिनके यश का वर्णन करने से हृदय में प्रकाश की किरणें जगती हैं और मलिन बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

बनारसीदासजी कहते हैं वह सुन्दर मूर्ति उन्हीं जिनेन्द्र देव की आकृति है जिनकी महिमा संसार में प्रसिद्ध है।

दुर्जन का मन

दुर्जन मनुष्यों का हृदय कैसा होता है इसको कविवर ने बड़े ही आकर्षक ढंग से बतलाया है।

सरल को सठ कहै वकता को धीठ कहै,
विनै करै तासों कहै धन को अधीन है।
क्षमी को निबल कहै दमी को अदत्ति कहै,
मधुर वचन बोले तासों कहै दीन है॥
धरमी को दंभी निसप्रेही को गुमानी कहे,
तृषणा घटावे तासों कहे भाग्यहीन हैं।
जहाँ साधु गुण देखे तिनकों लगावे दोष,
ऐसो कछु दुर्जन को हिरदो मलीन है॥

सरल और सीधे मनुष्य को मूर्ख कहता है, बोलने वाले को धृष्ट और जो विनय करता हो उसे धनहीन समझता है।

क्षमावान पुरुष को कमजोर, जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखता हो उसे लोभी और जो मधुर वचन बोलता हो उसे दीन कहता है।

धर्म करने वाले को ढोंगी, जो संसार से कोई मतलब न न रखता हो उसे घमंडी और जो अपनी चाह को कम करता हो उसे भाग्यहीन बतलाता है।

जहाँ कहीं साधुओं के गुण देखता है वहाँ ही दोषों को लगाता है। इस तरह दुर्जन मनुष्यों का हृदय मलिन ही होता है।

जैन दर्शन की विशेषता

जैन दर्शन की क्या मान्यता है उसमें अन्य दर्शनों की अपेक्षा क्या विशेषता है इसका युक्ति पूर्ण वर्णन सुनिए।

वेद पाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे,
मीमांसक कर्म माने उदै में रहत है।
बौद्धमती बुद्ध माने सूक्ष्म स्वभाव साधे,
शिवमति शिव रूप काल को कहत है।
न्याय ग्रन्थ के पढ़ैय्या थापे करतार रूप,
उद्यम उदीरि उर आनंद लहत है।
पांचों दरशनि तेतो पोषे एक एक अङ्ग,
जैनी जिन पंथि सरवंगनै गहत है।

वेद पाठी ब्रह्म मानकर निश्चय स्वरूप को ही ग्रहण करते हैं मीमांसक कर्म रूप मानकर उसके उदय में मग्न रहते हैं बौद्धमती बुद्ध मानकर सूक्ष्म स्वभाव की ही साधना करते हैं शिवमती प्रलय रूप ही शिव कहते हैं और न्याय ग्रन्थ के पढ़ने वाले कर्ता रूप स्थापित करते हैं और पुरुषार्थ को हेय मानकर

हृदय में आनन्द पाते हैं इस तरह ये पांचों दर्शन एक एक अङ्ग का ही पोषण करते हैं किन्तु सर्व अङ्गों का ग्रहण करने वाला जैन दर्शन सर्व रूप मानता है।

कुकवि निंदा

मिथ्या कल्पना करने वाले कवि की ओर लक्ष्य करते हुए कवि क्या कहते हैं इसे जरा ध्यान देकर सुनिए ?

मांस की गरंथि कुच कंचन कलश कहैं,
कहैं मुख चंद जो श्लेषमा को घर है।
हाड़ को दश न पांहि हीरा मोती कहैं तांहि,
मास के अधर ओठ कहैं विंबा फल हैं।
हाड़ दंड भुजा कहैं कोल नाल काम जुधा,
हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभा तरु है।
योंहि झूठी जुगति बनावें और कहावें कवि,
येते पर कहैं हमें शारदा को वर है।

अनेक कविगण मांस की गांठ को कंचन कलशों की उपमा देते हैं। जो कफ और थूक का भंडार है उस मुख को चन्द्र कहते हैं। हाड़ के टुकड़े दांतों को हीरा और मोती बतलाते हैं और मांस के अधरों को अनार फल कह देते हैं। हाड़ के दंड की भुजा को कमल नाल और काम की ध्वजा कहते हैं, जो हाड़ के थंभ है ऐसी जंघाओं को केले का थंभ कहते हैं इस तरह झूठी-झूठी कल्पनाएं करते हैं और कवि कहलाते हैं इतने पर कहते हैं कि हमें शारदा का वर प्राप्त हुआ है।

बनारसी विलास

वनारसी विलास कविवर की अनेक कविताओं का संग्रह है इसके संग्रह-कर्ता आगरा निवासी पं० जगजीवन जी हैं। आप कविवर की कविता के बड़े प्रेमी थे। सं० १७७१ में आपने बड़े परिश्रम से इस काव्य ग्रंथ का संग्रह किया है।

वनारसी विलास में धार्मिक, नीति वैराग्य, भक्ति, उपदेश तथा अध्यात्म संबंधी कुल ६० कविताओं का संग्रह है।

सभी कविताएं सरस भाव-पूर्ण और हृदयग्राही हैं। अध्यात्म गीत, वरवै, पहेली, शांतिनाथ स्तुति, अध्यात्म हिंडोल, अध्यात्म मल्हार आदि कविताएँ अत्यंत मधुर और हृदयग्राही हैं इन कविताओं में सरस और अनूठी कल्पनाओं और उपमाओं का अनुपम प्रयोग है। अध्यात्म जैसे विपय को इतना सरस और हृदय आकर्पक वना देना कवि की महान प्रतिभा का फल है।

नवरत्न, गोरख के वाक्य, फुटकर दोहे आदि कविताओं में राज्यनीति तथा समाजनीति का अच्छा विवेचन किया है।

मोक्ष पैडी पंजावी भापा में एक सुन्दर उपदेशमय रचना है इसमें बड़े मनोरम ढंग से आत्म परिचय दिया है।

शिव महिमा, भवसिन्धु चतुर्दशी आदि रचनाएं सरस कल्पनाओं तथा मनोरम भावों से परिपूर्ण है।

अन्य सभी कविताएं तथा पद धार्मिक और उपदेशपूर्ण होने के साथ-साथ काव्य की अनूठी कला से अलंकृत है उनमें पद पद पर कवि के उदार और कवित्वपूर्ण हृदय का परिचय मिलता है।

पाठकों के परिचय के लिए हम वनारसी विलास की कुछ कविताओं के थोड़े २ पद्य यहाँ उद्धृत करते हैं। पाठक देखेंगे कि उनमें कितनी सुन्दरता और कवित्व है।

बनारसी विलास

जिन सहस्त्रनाम

कविवर ने इस काव्य में १०३ पद्यों द्वारा जिनेन्द्र देव की १००८ नाम से स्तुति की है रचना शब्दालंकार मय अत्यन्त मनोहर है।

अलख, अमूरति, अरस, अखेद,
अचल, अबाधित, अमर, अवेद।
अमल, अनादि, अदीन, अक्षोभ,
अनातङ्क, अज, अगम, अलोभ॥

× × ×

ज्ञानगम्य, अध्यातमगम्य,
रमाविराम, रमापति रम्य।
अकथ, अकरता, अजर, अजीत,
अवपु, अनाकुल, विषयातीत॥

× × ×

चिन्मूरति, चेता, चिद्विलास,
चूड़ामड़ि, चिन्मय, चन्द्रहास।
चारित्रधाम, चित्, चमत्कार,
चरनातम रूपी, चिदाकार॥

× × ×

विस्मयधारी, बोधमय,
विश्वनाथ विश्वेश।
बंध विमोचन वज्रवत्,
बुद्धिनाथ विबुधेश॥

इसमें सरस्वती जिनवाणी की बड़ी मनोहर ढंग से उपासना की गई है प्रत्येक उपमा सरस है।

जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता,
विशुद्धा प्रवुद्धा नमो लोक माता।
दुराचार दुर्नय हरा शंकरानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैन वानी॥
सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला,
सुधाताप निर्नाशानी मेघमाला।
महा-मोह विध्वंसिनी मोक्षदानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैन वानी॥
अखै वृक्ष शाखा, व्यतीताभिलाषा,
कथा संस्कृता प्राकृता देश भाषा।
चिदानन्द भूपाल की राजधानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैन वानी॥

यह पार्श्वनाथ स्वामी की सुन्दर स्तुति है इसके मूल कर्ता आचार्य कुमुदचन्द्र हैं कविवर ने इसका वड़ा सुन्दर अनुवाद किया है इसमें कुल ३२ छंद हैं।

परम ज्योति, परमात्मा, परम ज्ञान परवीन।
वन्दों परमानन्दमय, घट घट अन्तर लीन॥
निर्भय करन परम परधान, भव समुद्र जल तारण यान।
शिव मंदिर अघ हरण अनिन्द, वन्दहु पास चरण अरविन्द॥

× × ×

उपजी तुम हिय उदधि तैं, वाणी सुधा समान।
जिहिं पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पद थान॥

× × ×

सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभुधुनि गरजत घोर।
श्याम सुतन घन रूप लख, नाचत भविजन मोर॥

सूक्ति मुक्तावली

श्रीमान् सोमप्रभाचार्य ने सूक्ति मुक्तावली नामक सुंदर काव्य की रचना की है कविवर ने उसका अनुवाद कितना सरस और सरल किया है इसके कुछ छंद यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

कवित्त

मूर्ख मनुष्य अपने जन्म को किस तरह खोता है इसकी उपमाएं देखिए।

ज्यों मति हीन विवेक विना नर,
साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै।
कंचन भाजन धूल भरै शठ,
मूढ़ सुधारस सों पग धोवै।
वाहित काग उड़ावन कारण,
डार महा मणि मूरख रोवै।
त्यों यह दुर्लभ देह बनारसि,
पाय अजान अकारथ खोवै।

अर्थ—जैसे कोई विवेक हीन मूर्ख मनुष्य हाथी को सजाकर उस पर ईंधन ढोता है, सोने के बर्तन में धूल भरता है, अमृत से पैर धोता है, कौए के उड़ाने को रत्न फेंक कर रोता है,

उसी तरह इस दुर्लभ देह को पाकर आत्म उद्धार के बिना मूर्ख मनुष्य व्यर्थ ही खोता है।

हिंसा करने से कभी भी पुण्य नहीं मिलता। इसका एक छंद सुनिए।

> जो पश्चिम रवि उगै, तिरै पापान जल,
> जो उलटै भुवि लोक, होय शीतल अनल
> जो सुमेरु डिग मिगे, सिद्ध के होय मल
> तबहूँ हिंसा करत, न उपजे पुण्य फल

अर्थ—सूर्य पश्चिम में ऊगने लगे, जल में पत्थर तैरने लगे, अग्नि शीतल हो जाए, सुमेरु पर्वत हिलने लगे, और सिद्धों के कर्म मल हो जांय, तो भी हिंसा करने से पुण्य फल प्राप्त नहीं हो सकता।

शील की महिमा कैसी है, इसका मनोरम वर्णन पढ़िए।

> कुल कलंक दलमलहि, पाप मल पङ्क पखारहि
> दारुण संकट हरहि, जगत महिमा विस्तारहि
> सुरग मुकति पद रचहि, सुकृत संचहि करुणारसि
> सुरगन वंदहि चरन, शील गुण कहत बनारसि

अर्थ—कुल कलंक को काट डालता है, पाप मैल को साफ करता है, घोर संकटों को दूर करता है, संसार में यश फैलाता है, स्वर्ग मुक्ति पद को देता है, पुण्य और करुणा रस को बढ़ाता है तथा देवताओं द्वारा पूजा जाता है। बनारसीदासजी कहते हैं इस शील की ऐसी महिमा है।

मत्तगयंद

इस छन्द में कविवर लक्ष्मी लीला को किस सुन्दर ढंग से बतलाते हैं।

नीच की ओर ढरै सरिता जिम,
घूम बढ़ावत नींद की नांई।
चंचला ह्व प्रगटे चपला जिम,
अंध करै जिम धूम की झांई।
तेज करै तिसना दव ज्यों मद,
ज्यों मद पोषित मूढ़ के तांई।
ये करतूति करै कमला जग,
डोलत ज्यों कुटला विन सांई।

अर्थ—नदी की तरह नीच की तरफ ढलती है, नींद की तरह बेहोशी बढ़ाती है, बिजली की तरह चंचल है, धुएं की तरह अंधा बना देती है। तृष्णा अग्नि को उसी तरह बढ़ाती है, जैसे—शराब मस्ती को बढ़ाती है, लक्ष्मी संसार में ये सब कार्य करती है, और वेश्या की तरह डोलती फिरती है।

घनाक्षरी

लक्ष्मी ऐसा क्यों करती है उसकी सुन्दर उक्तिएं देखिए।

नीच ही की ओर को उमंग चले कमला सो
पिता सिंधु सलिल स्वभाव याहि दियो है।
रहे न सुथिर है सकंटक चरन याको
वसी कंज माहि कंज कैसो पद कियो है॥

जाको मिले हित सों अचेत कर डारै ताहि
विष की बहिन तातें विष कैसो हियो है।
ऐसी ठगहारी जिन धरम के पंथ डारी
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है॥

अर्थ—लक्ष्मी नीच की ओर ही प्रेम से उमंग कर चलती है इसमें उसका कोई अपराध नहीं, इसके पिता समुद्र ने ही इसको यह स्वभाव दिया है। इसके पैर कहीं भी स्थिर नहीं रहते कमल में रहने वाली होने से कमल जैसे पैर मिले हैं। जिससे मिलती है उसे बेहोश कर डालती है, विष की बहिन होने के कारण विष जैसा ही इसका हृदय है। ऐसी ठगिनी लक्ष्मी को जिन्होंने धर्म के मार्ग में डाल दी है, उन्होंने ही इसके पाने का फल लिया है।

कवित्त

सज्जन पुरुषों का आभूषण क्या है ?
वंदन विनय मुकुट सिर ऊपर,
सुगुरु वचन कुंडल जुग कान।
अंतर शत्रु विजय भुज मण्डल,
मुकतमाल उर गुन अमलान।
त्याग सहज कर कटक विराजत,
शोभित सत्य वचन मुख पान।
भूषण तजहिं तऊ तन मंडित,
यातैं संत पुरुष परधान।

अर्थ—विनय का मुकुट सिर पर है, गुरु के वचन कुंडल कानों में हैं। काम क्रोध शत्रु पर विजय का बाजूबंद बाजुओं का भूषण है। उत्तम गुण मोतियों की माला हृदय पर है। त्याग

भाव के कड़े हाथों में विराजते हैं। सत्य पान से मुख सुशोभित हो रहा है। इस तरह पत्थर के गहनों के बिना ही सन्त पुरुषों का शरीर गुण के आभूषणों से सुशोभित होता है।

अध्यात्म गीत (राग गौरी)

इसमें कविवर ने आत्मा को नायक बनाया है सुमति उसकी पत्नी है सुमति आत्मा के प्रेम में कितनी तन्मय है। और वह उसे कितनी सुन्दर उपमाओं से संबोधित करती है इसका बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है।

इसमें कुल ३१ छन्द हैं। प्रत्येक छन्द अत्यंत सुन्दर और हृदयग्राही है। उपमाएं मौलिक, निर्दोष और अनूठी हैं।

मेरा मन का प्यारा जो मिलै, मेरा सहज सनेही जो मिलै।
अवधि अजोध्या आतम राम, सीता सुमति करै परणाम॥
उपज्यौ कंत मिलन को चाव, समता सखी सौं कहै इस भाव।
मैं विरहिन पिय के आधीन, यों तड़फों ज्यों जल बिन मीन॥
बाहिर देखूं तो पिय दूर, घट देखे घट में भरपूर।

× × ×

होहुँ मगन मैं दरसन पाय, ज्यों दरिया में बून्द समाय॥
पिय को मिलों अपनपो खोय, ओला गल पाणी ज्यों होय।

× × ×

पिय मोरे घट, मैं पिय मांहि, जल तरंग ज्यों द्विविधा नांहि।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति॥
पिय सुख सागर मैं सुख सींव, पिय शिव मंदिर मैं शिव नीव।
पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मैं केवलि वानि।
पिय भोगी मैं भुक्ति विशेष, पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥
जहाँ पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध, जहँ पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध।
जहाँ पिय राजा तहाँ मैं नीति, जहाँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥
पिय गुण ग्राहक मैं गुण पांति, पिय बहु नायक मैं बहु भांति।
जहँ पिय तहँ मैं पिय के संग, ज्यों शशि हरि मैं ज्योति अभंग ॥
कहइ व्यवहार बनारसि नाव, चेतन सुमति सही इक ठांव।

अर्थ:—जो कहीं मेरे मन का प्यारा मिल जावे, मेरा स्वाभाविक प्रेमी मुझे प्राप्त हो जावे।

अवधि रूपी अयोध्या नगरी में आत्म राम रहते हैं उनको सुमति सीता प्रणाम करती है।

हृदय में पति के मिलने की लालसा उत्पन्न होने पर सुमति अपनी समता सखी से इस प्रकार कहने लगी।

मैं विरहिन पिया के वश में हूँ। उनके बिना मैं इस तरह तड़फ रही हूँ जैसे जल के बिना मछली तड़पती है।

हे सखी! अगर मैं बाहिर देखती हूं तो मेरा पति बहुत दूर दिखता है और यदि घट के अन्दर देखती हूं तो वह उसी में समाया हुआ है।

उसका दर्शन पाते ही मैं इस तरह उन्हीं में मग्न हो जाऊंगी, जैसे समुद्र में बून्द समा जाती है। मैं अपने आपे को खोकर पिया से इस तरह मिलूंगी जैसे ओला गलकर पानी हो जाता है। मेरा पति मेरे हृदय में है और मैं पति के हृदय में

उसी तरह समाई हुई हूँ जिस तरह जल और उसकी तरंग में कोई भेद नहीं रहता।

मेरा पति कर्ता है और मैं क्रिया हूँ। पति ज्ञानी है और मैं ज्ञान विभूति हूँ।

पति सुख का समुद्र है और मैं सुख सागर की सीमा हूँ। पति शिव मंदिर है और मैं उसकी नींव हूँ।

पति ब्रह्मा है और मेरा नाम सरस्वती है, पति पति विष्णु है और मैं लक्ष्मी हूँ।

पति शंकर है और मैं भवानी देवी हूँ। पति जिनेन्द्र देव है और मैं जिनवाणी हूँ।

पति भोगी है और मैं भुक्ति हूँ। पति योगी है और मैं उसका भेष हूँ।

पति जहाँ पर साधक है वहाँ मैं सिद्धि हूँ। जहाँ पति स्वामी है वहाँ मैं रिद्धि रूप में विराजमान हूँ जहाँ पति राजा है वहाँ मैं नीति हूँ और जहाँ पति योद्धा है वहाँ मैं जीत हूँ।

पति गुण ग्राहक है और मैं गुण का समूह हूँ पति बहुतों का नायक है और मैं वहुत प्रकार हूँ।

जहाँ मेरा पति है वहाँ मैं उसी तरह उसके संग हूं जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा में ज्योति समाई हुई है।

बनारसीदास जी कहते हैं कि केवल कहने सुनने के लिए ही चेतन और सुमति के दो नाम हैं परन्तु वास्तव में वह दोनों एक ही हैं।

नवरत्न कवित्त

इसमें ९ छन्दों में नीति शास्त्र का रहस्य बड़ी सुन्दरता से भर दिया है वर्णन सजीव और सरस है।

विमल चित्त करि मित्त, शत्रु छल वल वश किज्जय।
प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तह धन दिज्जय॥
युवति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय।
महाराज गुण कथन, वन्धु सम-रस सनमानिय॥
गुरु नमन शीष रससों रसिक, विद्या वल वुधि मन हरिय।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जग वश करिय॥

शुद्ध मन से मित्र, छल से शत्रु, सेवा से स्वामी, धन से लोभी, प्रेम से पत्नी, आदर से साधु, गुण कथन से राजा, अपने पन से कुटुम्बी, विनय से गुरु, रसिकता से रसिक, विद्या से वुद्धिमान, वातों से मूर्ख, और सरल स्वभाव से संसार को वश में करना चाहिए।

इस छन्द में माली का उदाहरण देकर राज्य नीति का वड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है।

शिथिल मूल दिढ़ करै, फूल चूटै जल सींचै।
ऊरध डार नवाय, भूमि गत ऊरध खींचै॥
जो मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधारइ।
कूड़ा कंटक गलित पत्र, वाहिर चुन डारइ॥
लघु वृद्धि करइ भेदे जुगल, वाड़ि सँवारै फल चखै।
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै संपति अखै॥

जिस तरह माली हिलती हुई जड़ को मजवूत करता है फूल चुनता है और जल सींचता है। ऊँची डाल को नीचे

झुकाता है और जमीन पर पड़ी हुई डाल को ऊँचे उठाता है। जो मलिन होकर मुरझाते हैं उन्हें सहारा देकर उनका सुधार करता है। कूड़ा काँटे और सड़े पत्तों को चुनकर बाहिर फेंकता है छोटों को बढ़ाता है दो को अलग अलग करता है, बाढ़ को संभालता है। और फल चखता है।

उसी तरह चतुर राजा भी प्रजा रूपी बाग की माली की तरह रक्षा करता हुआ सुख संपत्ति को भोगता है।

नीचे लिखे छंद में मूर्ख पुरुषों का चित्र देखिए।

ज्ञानवंत हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै।
पंडित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमानै॥
कुलवंतपुरुषकुलविधितजै, बंधु न मानै बंधु हित।
सन्यासधार धन संग्रहै, ते जग में मूरख विदित॥

जो ज्ञानवान हठ करता है, निर्धन परिवार बढ़ाता है विधवा घमंड करती है, धनी होकर नौकर की तरह दौड़ता है, वृद्ध होकर धर्म नहीं समझता है। जो स्त्री अपने पति का अपमान करती है, जो विद्वान् योग्य क्रियाओं को नहीं करता है। जो राजा कुबुद्धि को धारण करता है, कुलीन पुरुष कुल की रीति को छोड़ता है, जो भाई, भाई के हित को नहीं समझता और जो सन्यास धारणकर धन संग्रह करता है वह संसार में महा मूर्ख है।

बरवै

कविवर ने सुन्दर बरवै छन्दों में पूर्वी भाषा में यह बड़ी ही सरस कविता की है। इसमें सुमति अपने पति चेतन को क्या ही मनोरम उपदेश देती है।

बालम तुहूँ तन, चितवन गागरि फूटि।
अँचरा गौ . फहराय सरम गैछूटि ॥१॥
पिऊ सुधि आवत वन में पैसिउ पेलि।
छाड़उ राज डगरिया भयऊ अकेलि ॥२॥
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप ॥३॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर।
चार चोर घर मूँसंहि सरवस तोर ॥४॥
चेतन भयऊ अचेतन संगत पाय।
चकमक में आगी देखी नहिं जाय ॥५॥
चेतन तुहिं लपटाय प्रेम रस फाँद।
जस राखत घन तोपि विमल निशि चाँद ॥६॥
चेतन यह भवसागर धरम जिहाज।
तिहि चढ़ बैठो छाड़ि लोक की लाज ॥७॥

प्यारे चेतन! तेरी ओर देखते ही पराएपन की गगरी फूट गई दुबिधा का अंचल हट गया और मेरी सारी ही लज्जा छूट गई।

प्यारे चेतन की सुधि आते ही उसकी खोज करने के लिए राज्य की गली छोड़कर अकेली ही वन में घुस पड़ी।

काया नगरी के भीतर मेरा प्यारा चेतन राजा रहता है। वह अनंत बल वाला और ज्योति स्वरूप है उसके ऊपर कर्म का लेप चढ़ा हुआ है।

हे प्यारे चेतन! तू मोह की नींद में वेहोश होकर मत सो अरे सावधान हो। देख! ये (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार चोर तेरा सारा माल खजाना लूटे लिए जाते हैं।

प्यारे चेतन! तू अचेतन (जड़ शरीर) की संगति से जड़ रूप बन गया है और जिस तरह चकमक में आग नहीं दिखती उसी तरह से तुझे आत्मरूप नहीं दिखता।

हे चेतन! तू जड़ शरीर के प्रेम रस के फंदे में इस तरह फँस गया है जिस तरह बादल चन्द्रमा की सुन्दर किरणों को छिपा लेता है।

हे प्यारे चेतन! दुनियां की झूठी लज्जा को छोड़कर धर्म जहाज पर चढ़कर तू संसार समुद्र से पार हो।

ज्ञान पच्चीसी

इसमें २५ दोहे हैं प्रत्येक दोहा आत्म ज्ञान की तरंगें भरने वाला है। एक छोटे से दोहे में ज्ञान का महान रहस्य भर दिया है।

प्रत्येक उपमा सरस और हृदय को आकर्पित करने वाली है। आत्मा को मीठी मीठी थपकी देकर चैतन्य किया गया है।

ज्यों काहू विपधर डसै, रुचि सों नीम चवाय।
त्यों तुम ममता में मढ़े, मगन विपय सुख पाय॥
ज्यों सछिद्र नौका चढ़े, वूड़ई अंध अदेख।

त्यों तुम भव जल में परे, बिन विवेक धर भेख ॥
जैसे ज्वर के जोर सों, भोजन की रुचि जाय।
तैसे कुकरम के उदै, धर्म वचन न सुहाइ ॥
जैसे पवन झकोर तैं, जल में उठै तरंग।
त्यों मनसा चंचल भई, परिगह के पर संग ॥

हे भाई ! जिस तरह सर्प के काटने पर मनुष्य कड़वी नीम को प्रेम से चबाता है उसी तरह तुम भी ममता के जहर से व्याकुल हुए विषय में मग्न होकर सुख मानते हो।

जिस तरह छेद वाली नाव पर चढ़ने वाला अंधा आदमी अवश्य बीच धार में डूबता है उसी तरह तुम भी विवेक हीन होकर अनेक भेष रखकर भव समुद्र में पड़े हो।

जिस तरह ज्वर के वेग से भोजन की रुचि चली जाती है उसी तरह खोटे कर्म के उदय से धर्म वचन अच्छे नहीं लगते हैं।

जिस तरह हवा के झोंके से जल में तरंग उठती है उसी तरह धन दौलत आदि परिग्रह की प्रीति से मन चंचल हो जाता है।

अध्यात्म बत्तीसी

इसमें ३२ दोहे हैं प्रत्येक दोहे में आत्मा के स्वरूप का बड़ी सुन्दर उक्तियों से दिग्दर्शन कराया है।

ज्यों सुवास फल फूल में, दही दूध में घीव,
पावक काठ पषाण में, त्यों शरीर में जीव।
चेतन पुद्गल यों मिले, ज्यों तिल में खलि तेल,

प्रकट एक से दीखिए, यह अनादि को खेल ॥
वह वाके रस में रमें, वह वासों लपटाय,
चुम्बक करषै लोह को, लोह लगै तिह धाय।
कर्मचक्र की नींद सों, मृषा स्वप्न की दौर,
ज्ञान चक्र की ढरनि में, सजग भांति सब ठौर ॥

जिस तरह फल फूल में सुगन्धि है, दही दूध में घी है और काठ तथा पाषाण में अग्नि समाई हुई है उसी तरह शरीर में जीव बसा हुआ है।

चेतन और पुद्गल (शरीर) इस तरह से मिले हुए हैं जैसे तिल में खली और तेल है। परन्तु वह अनादि काल से एक से दिखते हैं।

चेतन पुद्गल के रस में रमता है और पुद्गल चेतन से लिपटती है जिस तरह चुम्बक पत्थर लोहे को खींचता है और लोहा दौड़कर उससे चिपटता है।

कर्म चक्र की नींद में पड़कर झूठे स्वप्नों की ओर दौड़ता है परन्तु जिस समय ज्ञान चक्र फिरता है उस समय सब जगह सचेतनता छा जाती है।

नव दुर्गा विधान

इसमें ९ छन्दों में सुमति की नव दुर्गाओं में कल्पनाओं कल्पना की है। कल्पना बड़ी ही मनोहर है। इसका एक छंद देखिए।

यहै ध्यान अगनि प्रगट भये ज्वालामुखी,
यहै चंडी मोह महिषासुर निदरणी।

यहै अष्टभुजी अष्ट कर्म की शकति भंजै,
यहै काल भंजनी उलंघै काल करणी ॥
यहै काम नाशिनी कमिक्षा कलि में कहावे,
यहै भव भेदनी भवानी शंभु घरनी।
यहै राम रमणी सहज रूप सीता सती,
यहै देवी सुमति अनेक भांति वरनी ॥

ध्यान अग्नि के प्रगट होने पर यही ज्वाला मुखी है और मोह महिषासुर को जीतने वाली यही चंडी है।

अष्ट कर्मों की शक्ति को नष्ट करने वाली अष्ट भुजी यही है और काल को जीतने वाली यही काल भंजनी है।

काम को जीतने वाली है इसलिए यह कलिकाल में कमक्षा कहलाती है और भव को भेदने वाली यही भवानी है।

आत्मराम में स्वाभाविक रूप से रमनेवाली यही सीता है। इस तरह इस सुमति देवी का अनेक तरह से वर्णन किया गया है।

कर्म छत्तीसी

इसमें कर्म की प्रकृतियों का वर्णन ३६ छंदों में किया गया है और अंत में वतलाया है कि शुभ-अशुभ कर्म दोनों ही वंधन हैं। उपमाएं बहुत सरस हैं।

कोऊ गिरैं पहाड़ चढ़, कोऊ बूढ़ैं कूप,
मरण दुहू को एक सो कहिवे के द्वै रूप।
माता दुहुँ की वेदनी, पिता दुहूँ को मोह,
दुहुँवेड़ी सो वंधि रहे, कहवत कंचन लोह ॥

जाके जित जैसी दशा, ताकी तैसी दृष्टि,
पंडित भव खंडित करै, मूढ़ बढ़ावैं सृष्टि।

चाहे कोई पहाड़ पर चढ़कर मरे और चाहे कोई कुए में डूबकर मरे दोनों की मृत्यु एक सी है केवल कहने के लिए उसके दो भेद हैं।

शुभ-अशुभ दोनों की माता वेदनी है और मोह दोनों का पिता है। दोनों ही बेड़ियों से बँधे हुए हैं एक सोने की बेड़ी कहलाती है और दूसरी लोहे की।

जिसकी जहाँ जैसी हालत है उसकी वहाँ वैसी ही दृष्टि है। पंडित शुभ-अशुभ दोनों का त्यागकर संसार को नष्ट करता है और मूर्ख दोनों में मग्न होकर संसार को बढ़ाता है।

अध्यात्म हिंडोलना

चैतन्य आत्मा स्वाभाविक सुख के हिंडोले पर आत्म गुणों के साथ क्रीड़ा करता है इसका हृदयग्राही और सरस वर्णन कवि ने बड़े आकर्षक ढंग से किया है।

सहज हिंडना हरख हिलोडना, झूलत चेतन राव।
जहँ धर्म कर्म संजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव॥
जहँ सुमन रूप अनूप मन्दिर, सुरुचि भूमि सुरंग।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड अभंग॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, भौंर विमल विवेक।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी, सुमति पटली एक॥
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ अशुभ कल्लोल।
पट कील जहाँ षट् द्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल॥

संवेग संवर निकट सेवक, व्रिरत वीरे देत।
आनंद कंद सुछंद साहिब, सुख समाधि समेत॥
धारना समता क्षमा करुणा, चार सखि चहुँ ओर।
निर्जरा दोऊ चतुर दासी, करहिं खिदमत जोर॥
जहँ विनय मिलि सातों सुहागिन, करत धुनि झनकार।
गुरु वचन राग सिद्धान्त धुरपद, ताल अरथ विचार॥
श्रद्दहन सांची मेघ माला, दाम गर्जत छोर।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक शोर॥
अनुभूति दामनि दमक दीसै, शील शीत समीर।
तप भेद तपत उछेद परगट भाव रंगत चीर॥
इह भांति सहज हिंडोल झूलत, करत ज्ञान विलास।
कर जोर भगति विशेप, विधि सों नम वनारसिदास॥

हर्ष के हिंडोले पर चेतन राजा सहज रूप से झूलते हैं जहाँ धर्म और कर्म के संयोग से स्वभाव और विभाव रूप रस पैदा होता है

मन के अनुपम महल में सुरुचि रूपी सुन्दर भूमि है उसमें ज्ञान और दर्शन के अचल खंभे और चरित्र की मजबूत रस्सी लगी है।

वहाँ गुण और पर्याय की सुगन्धित वायु रहती है और निर्मल विवेक भौंरा गुंजार करता है। व्यवहार और निश्चय नय की दंडी लगी है, सुमति की पटली विछी है। और उसमें छह द्रव्य की छह कीलें लगी हैं। कर्मों का उदय और पुरुपार्थ दोनों मिलकर झोंटा देते हैं जिसमें शुभ और अशुभ की किलोलें उठती हैं। संवेग और संवर दोनों सेवक सेवा करते हैं और व्रत वीड़े देते हैं। जिस पर आनन्द स्वरूप चेतन अपने आत्म सुख की समाधि में निश्चल विराजमान हैं।

धारणा, समता, क्षमा और करुणा ये चारों सखिएं चारों ओर खड़ी हैं, सकाम, अकाम, निर्जरा रूपी दासिएं सेवा कर रही हैं।

जहाँ पर सातों नय रूपी सुहागिनी महिलाओं की मधुर ध्वनि झंकार हो रही है। गुरु वचन का सुन्दर राग अलापा जा रहा है तथा सिद्धान्त रूपी धुरपद और अर्थ विचार रूपी लाल का संचार हो रहा है। सत्य श्रृद्धान रूपी मेघमाला बड़े जोर से गरजती है उपदेश की वर्षा होती है और भव्य चातक शोर मचाते हैं। आत्म अनुभव रूपी बिजली जोर से चमकती है और शील रूपी शीतल वायु बहती है। तपस्या के जोर से कर्मों का जाल भंग होता है और आत्म शक्ति प्रगट होती है।

इस तरह हर्ष सहित शुद्ध भाव के हिंडोले पर आत्म भावना का सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए स्वाभाविक रूप से झूलता हुआ चेतन आत्म ज्ञान का विकास रहता है। उस शुद्ध चैतन्य को वनारसीदास विधि सहित भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं।

मोक्ष पैड़ी

इसमें पंजाबी भाषा में मुक्ति की सीढ़ी प्राप्त करने का बड़ा सुन्दर उपदेश दिया है। प्रत्येक उपमा मनोहर और सरस है।

ये जिन वचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला।
इस बुझे बुध लहलहै, नहिं रहै मयल्ला॥ १॥
जिसदी गिरदा पंच सों, हिरदा कलमल्ला।
जिसना संसौ तिमिर सों, सूझे झलमल्ला॥ २॥

खनै जिन्हादी भूमिनै, कुज्ञान कुदल्ला।
सहज तिन्हादा वहज सों, चित रहै दुदल्ला ॥ ३ ॥
जिन्हां चित्त इतबार सों, गुरु वचन न झल्ला।
जिन्हां आगे कथन यों, ज्यों कोदों दल्ला ॥ ४ ॥
वरसे पाहन भुम्मि में, नहिं होय चहल्ला।
वोये वीज न उप्पजै, जल जाय वहल्ला ॥ ५ ॥
ह्वै वनवासी तै तजा, घर वार मुहल्ला।
अप्पा पर न पिछाणियां, सब झूठी गल्ला ॥ ६ ॥
ज्यों रुधिरादी पुट्ट सों, पट दीसे लल्ला।
रुधिरानलहि पखलिए, नहीं होय उजल्ला ॥ ७ ॥
किण तू जकरा सांकला, किण पकड़ा पल्ला।
मिद मकरा ज्यों उरभिया, उर आप उगल्ला ॥ ८ ॥
जो जीरण ह्वै झर पड़ै, जो होय नवल्ला।
जो मुरझावै सुक्कव, फुल्ला अरु फल्ला ॥ ९ ॥
जो पानी में वह चले, पावक में जल्ला।
सो सब नाना रूप हैं निहचै पुद्गल्ला ॥ १० ॥
खिण रोवे खिण में हँसै, जों मद मतवल्ला।
त्यों दुहुँवादी मौज सों, वेहोश सँभल्ला ॥ ११ ॥
ईकस वीच विनोद है इक में खल भल्ला।
समदृष्टी सज्जन करै, दुहुँ सो हल भल्ला ॥ १२ ॥
ज्ञान दिवाकर उग्गियो, मति किरण प्रवल्ला।
ह्वै शत खंड विहंडिया, भ्रम तिमर पटल्ला ॥ १३ ॥
यह सत्गुरु दी देशना, कर आश्रव दी वाड़ि।
लद्धी पैड़ि मोखदी, करम कपाट उघाडि ॥ १४ ॥

हे चतुर चेतन! यह सुहावने जिन वचन सुन। इनको समझने से सुबुद्धि जगती है और मलिनता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

जिसका हृदय भ्रम के कीचड़ से मलिन है और संशय के तिमिर रोग से जिसे झलमला दिखता है जिसके हृदय रूपी भूमि में कुज्ञान का कुदाल चलता रहता है। उसका मन सदा ही इधर उधर डोलता रहता है ॥ २-३ ॥

जो श्रद्धा पूर्वक गुरु के वचनों को नहीं सुनते हैं उनके आगे यह कथन उसी प्रकार है जिस तरह कोदों का दलना ॥ ४ ॥

जिस तरह ऊसर जमीन में बरसा जल और पत्थर पर बोया बीज व्यर्थ ही होता है उसी तरह अश्रद्धानी को उपदेश देना व्यर्थ है ॥ ५ ॥

तूने बनवासी बनकर मकान और कुटुम्ब छोड़ दिया परन्तु यदि तुझे अपने और पराये का ज्ञान नहीं हुआ तो यह सब त्याग झूठा है ॥ ६ ॥

जिस तरह खून से रंगा हुआ लाल कपड़ा खून से धोने पर साफ नहीं होता है उसी तरह ममत्वभाव से संसार नहीं छूटता ॥ ७ ॥

अरे! तुझे मोह की सांकल में किसने जकड़ा है। भाई तेरा पल्ला किसने पकड़ा है। किसी ने भी नहीं। जिस तरह मकड़ी अपने मुँह से तार निकालकर खुद ही फँसती है उसी तरह तू खुद ही संसार की वस्तुओं से मोह करके उनमें फँसा है ॥ ८ ॥

जो जीर्ण होकर गिर पड़ता है जो फिर नया जन्म धारण करता है जो मुरझाता है जो सूखता और जो फूलता फलता है। जो पानी में बहता है और आग में जलता है वह सब तरह तरह के रूप रखने वाला पुद्गल है आत्मा तो न जन्म लेता है न मरता है ॥ ९-१० ॥

अज्ञानी मनुष्य मतवाले की तरह शुभ कर्म के उदय से क्षण में हँसता है और अशुभ कर्म के उदय से क्षण में रोने लगता है वह पुण्य पाप की शराब में हमेशा बेहोश रहकर आनन्द मानता है ॥ ११ ॥

वह एक में विनोद और एक में खेदित होता है परन्तु समदृष्टी सज्जन दोनों से मुक्त रहते हैं ॥ १२ ॥

गुरु का उपदेश सुनने से आत्म ज्ञान जागृत हुआ। ज्ञान के प्रगट होने पर, सुबुद्धि रूपी तेज किरणों के प्रभाव से, भ्रम अंधकार के पटल के सैंकड़ों टुकड़े हो गए ॥ १३ ॥

सतगुरु का यह उपदेश सुनकर आश्रव की रोक करके कर्म के किवाड़ों को खोलकर मोक्ष की सीड़ी प्राप्त की ॥ १४ ॥

शिव पच्चीसी

इसमें आत्मा को शिव रूप मानकर उसकी शिव के गुणों से तुलना की है। वर्णन बड़ा ही सुन्दर है।

जीव और शिव और न कोई, सोई जीव वस्तु शिव सोई।
करै जीव जब शिव की पूजा, नाम भेद सों होय न दूजा ॥
तन मंडप मनसा जहँ वेदी, आतम मग्न आत्म रस भेदी।
समरस जल अभिषेक करावै, उपशम रस चन्दन घसि लावै ॥

सुमति गौरि अर्द्धंग वखानी, सुर सरिता करुणा रस वाणी।
शक्ति विभूति अंग छवि छाजै, तीन गुपति तिरशूल विराजै ॥
ब्रह्म समाधि ध्यान ग्रह साजै, तहाँ अनाहत डमरू बाजै।
संजम जटा सहज सुख भोगी, निहचै रूप दिगम्बर जोगी ॥
अष्ट कर्म सों भिड़ै अकेला, महा रुद्र कहिए तिहिं बेला।
मोह हरण हर नाम कहीजे, शिव स्वरूप शिव साधन कीजे ॥

जीव और शिव कोई अलग-अलग पदार्थ नहीं है जो जीव है वही शिव है। जिस समय जीव शिव की पूजा करता है उस समय वह अपनी ही पूजा करता है।

शरीर मंडप में विचार की वेदी पर आत्म रस में आत्मा मग्न है वह अपने आपका समता रस से अभिषेक करता है और उपशम रस का चन्दन लगाता है।

सुमति पार्वती उसके अर्द्धाङ्ग में रहती है, करुणा रस मई वाणी ही गंगा है, अनन्त शक्ति रूपी विभूति उसकी शोभा बढ़ाती है और तीन गुप्तिएँ ही उसका त्रिशूल है।

ब्रह्म समाधि से उसका ध्यान रूपी ग्रह सज रहा है और वहाँ पर अनाहत डमरू बजता है।

संयम ही जिसकी जटाएँ है वह स्वाभाविक सुख का भोग करने वाला निश्चय रूप से दिगम्बर योगी है।

जिस समय वह अकेला ही अष्ट कर्मों से भिड़ता है उस समय महारुद्र कहलाता है। मोह का हरण करता है, इसलिए हर कहलाता है वह ही शिव स्वरूप है। ऐसे चैतन्य आत्मा शिव की ही सदा साधना करना चाहिए।

भवसिन्धु चतुर्दशी

इसमें संसार को समुद्र की उपमा देकर उसका मनोहर ढंग से वर्णन किया है और फिर उससे पार होने का सरल और अनुभूत उपाय बतलाया है। उपमाएँ बहुत ही सरस और सरल है।

कर्म समुद्र विभाव जल, विषय कषाय तरंग।
बड़वानल तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सर्वंग॥
भरम भँवर तामैं फिरै, मन जहाज चहुँ ओर।
गिरै फिरै बूढ़ै तिरै, उदय पवन के जोर॥
जब चेतन मालिम जगै, लखै विपाक नजूम।
डारै समता शृङ्खला, थकै भँवर की घूम॥
दिशि परखै गुण जंत्र सों, फेरै शकति सुखान।
धरै साथ शिव दीप मुख, बादबान शुभ ध्यान॥

कर्म रूपी महासमुद्र है उसमें (क्रोध, मान, माया, लोभ) विभाव रूपी जल भरा है विषय वासनाओं की तरंगें उठती हैं तृष्णा रूपी प्रबल बड़वा अग्नि है और चारों ओर ममता रूपी गर्जना हो रही है। उसमें भ्रम का भँवर पड़ता है जिसमें मन रूपी जहाज़ चारों ओर घूमता है, कर्म के उदय रूपी पवन के जोर से वह कभी गिरता है कभी डगमगाता है कभी डूबता है और कभी तैरता है।

जिस समय चैतन्य आत्मा जागृत होता है उस समय वह कर्मों के रस रूपी नजूम को देखता है। और समता रूपी सांकल डालता है जिससे भँवर का चक्कर रुक जाता है। आत्म गुण रूपी यंत्र से दिशाओं का ज्ञान करता है और शक्ति के पतवार को चलाता।

शुभ ध्यान रूपी मल्लाह के द्वारा शिव द्वीप की ओर मुंह करके चलता है और मुक्ति को प्राप्त करता है।

ज्ञानबावनी

इसमें ५२ पद्य हैं प्रत्येक पद्य भाषा प्रौढ़ता और उपमाओं से विभूषित है। इसमें ज्ञान की महिमा का मनोहर वर्णन

किया है। इस पद्य में कविवर जैन-शासन की महत्वता का वर्णन करते हैं—

उर्दै भयो भानु कोऊ पंथी उठ्यो पंथ काज,
कहै नैन तेज थोरो दीप कर चहिए।
कोऊ कोटी ध्वज नृप छत्र छाँह पुर तज,
ताहि हाँस भई जाय ग्राम वास रहिए॥
मंगल प्रचंड तज काहू ऐसी इच्छा भई,
एक खर निज असवारी काज चहिए।
बानारसीदास जिन वचन प्रकाश सुन,
और बैन सुन्यो चाहै तासों ऐसी कहिए॥

जो प्रकाशमान जिन वचनों को सुनकर अन्य के उपदेश सुनने की इच्छा रखता है उसकी इच्छा इसी प्रकार है जैसे प्रभात होने पर मार्ग चलनेवाला कोई पथिक यह कहता हो कि सूर्य का प्रकाश थोड़ा है मुझे तो दीपक चाहिए और कोई करोड़पति राजा छत्र की छाया और नगर का निवास-स्थान त्यागकर, गाँव में रहने की इच्छा करता हो तथा तेजवान हाथी की सवारी त्यागकर कोई मनुष्य गधे पर चढ़ने की चाह रखता हो।

भवसमुद्र का तारक आत्म-ज्ञान है तू उसी की खोज कर।

कौन काज मुगध करत वध दीन पशु,
जागी न अगम ज्योति कैसो जग करि है।
कौन काज सरिता समुद्र सर जल डोहै,
आतम अमल डोहयो अजहूँ न डरि है॥
काहे परिणाम संक्लेश रूप करे जीव,
पुण्य पाप भेद किए कहुँ न उधरि है।
बानारसीदास निज उकत अमृत रस,
सोई ज्ञान सुनै तू अनंत भव तरि है॥

हे मूर्ख ! तू किसलिए दीन पशुओं का वध करता है यदि हृदय में ज्ञान की ज्योति जागृत नहीं हुई तो तू क्या यज्ञ करेगा !

समुद्र और सरिताओं का जल किसलिए डोलता है यदि तूने निर्मल आत्म-जल में क्रीड़ा नहीं की तो व्यर्थ जल डोलने से क्या शान्ति प्राप्त करेगा !

हे भाई ! पुण्य और पाप के उदय होने पर तू अपने परिणामों को क्यों संक्लेश रूप करता है इन दोनों का त्याग किए बिना तेरा कभी उद्धार नहीं हो सकता है।

बनारसीदास कहते हैं तू आत्म ज्ञान अमृत रस का पान कर उसीसे अनन्त संसार से तर सकेगा।

मोक्ष चलिबे को पंथ भूले पंथ पथिक ज्यों,
पंथ बल हीन ताहि सुख रथ सारिसी।
सहज समाधि जोग साधिबे को रंग भूमि,
परम अगमपद पढ़िबे को पारसी॥
भव सिंधु तारिबे को शवद धरै है पोत,
ज्ञान घाट पाये श्रुत लंगर लै भारसी।
समकित नैननि को थाके नैन अंजन से,
आतमा निहारिबे को आरसी बनारसी॥

जो पथिक मोक्ष का मार्ग भूले हुए हैं और जिनमें मार्ग पर चलने की सामर्थ्य नहीं है उनके लिए सुखकर रथ के समान है।

आत्म समाधि का साधन करने के लिए रंगभूमि है और महा अगम्य अध्यात्म पाठ पढ़ने के लिए जो पारसी विद्या के समान है।

जो संसार समुद्र से तरने के लिए 'शब्द' रूपी पतवार धारण किये हुए है और शास्त्र का लंगर लेकर ज्ञान के घाट पर उतार देता है।

श्रद्धा के थके हुए नेत्रों को जो अंजन के समान है और जो आत्मा के देखने को आरसी है ऐसा वह आत्मबोध है।

छत्र धार बैठे घने लोगनि की भीर भार,
दीसत स्वरूप सुसनेहिनी सी नारी है।
सेना चारि साजि के विराने देश दोड़ी फेरी,
फेर सार करैं मानो चौसर पसारी है॥
कहत बनारसी बजाय धौंसा बार बार,
राग रस राच्यो दिन चार ही की वारी है।
खुल्यो न खजानो न खजानची को खोज पायो,
राज खसि जायगो खजाने विन ख्वारी है॥

राज्य छत्र धारण कर महान राज्य-सभा में बैठे हुए बड़े कान्तिवान दिखते हैं, जिनकी अत्यन्त स्नेहवती पत्नी है और जिन्होंने चतुरंगिनी सेना सजकर दूसरे देशों में विजय की दुन्दुभि बजादी है।

चारों कोनों में घूमकर जिन्होंने मानो चौपड़ ही बिछा दी है वह आनन्द रस का नगाड़ा बजाकर राग रङ्ग में मग्न हो रहा है किन्तु यह सब केवल चार दिन के लिए ही है।

अरे! यदि आत्म-वैभव के खजाने को नहीं खोल पाया और न ज्ञान खजांची का पता ही लगा सका तो यह राज्य तो चार दिन में ही छीन लिया जायगा फिर विना आत्म धन के खजाने के संसार में उनकी दुर्गति होगी।

आत्म ज्ञानी की रीति

ऋतु वरसात नदी नाले सर जोर चढ़े,
  वढ़ै नाहिं मरजाद सागर के फैल की।
नीर के प्रवाह तृण काठ वृन्द वहे जात,
  चित्रा वेल आइ चढ़ै नाहीं कहू गेलकी ॥
वानारसीदास ऐसे पंचन के पर पंच,
  रंचक न संक आवै वीर बुद्धि छैल की।
कुछ न अनीत न क्यों प्रीति पर गुण सेती,
  ऐसी रीति विपरीति अध्यातम शैल की ॥

वर्षा ऋतु में नदी नाले और तालाब वड़ी तेज़ी से चढ़ते हैं परन्तु सागर कभी अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता।

जल के तेज़ प्रवाह में तृण और काठ का समूह वहता जाता है परन्तु चित्रा वेल उसके साथ मिलकर कभी भी गली-गली में कहीं नहीं फिरती है।

इसी तरह पांचों इन्द्रियों के प्रपंच में पड़कर आत्मज्ञानी वीर विलासी की बुद्धि में थोड़ीसी भी विकृति नहीं आती।

वह न तो कुछ अनीति करता है और न परगुणों (काम-क्रोध, माया, लोभ) से प्रीति रखता है इस तरह अध्यात्म शिखर पर चढ़ने वाले ज्ञानी की रीति विपरीत ही होती है।

विना अनुभव के लिखना पढ़ना सब वेकार है।

लिखत पढ़त ठाम ठाम लोक लक्ष कोटि
  ऐसो पाठ पढ़े कछू ज्ञानहू न वढ़िए।
मिथ्यामती पचि पचिं शास्त्र के समूह पढ़े,
  पर न विकास भयो भव दधि कढ़िए ॥

दीपक संजोय दीनो चक्षु हीन ताके कर,
विकट पहार वा पै कबहूं न चढ़ि..
बानारसी दास सो तो ज्ञान के प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़े कछू लख्यो है सो पढ़िए ॥

जगह-जगह लाखों और करोड़ों लोग लिखते पढ़ते हैं इस तरह का पाठ पढ़ने से कुछ ज्ञान नहीं बढ़ने का। असत् पक्ष वाले बड़े परिश्रम से शास्त्रों को पढ़ते हैं परन्तु उससे न तो आत्म विकास होता है न संसार समुद्र से तरना होता है। अंधे के हाथ में दीपक देने से क्या वह ऊँचे पहाड़ पर चढ़ सकता है।

ज्ञान का प्रकाश होने पर हे भाई! लिखा हुआ क्या पढ़ता है यदि कुछ अनुभव किया हो तो पढ़।

कितनी मनोहर युक्ति है।

पहेली

यह एक आध्यात्मिक पहेली है इसमें कुल १२ छन्द हैं इसका अर्थ बड़ा गम्भीर, भाषा मनोरम और कल्पना अनूठी है इसे आप पढ़िए और कवि की मनोहर कल्पना का आनन्द लीजिए।

कुमति सुमति दोऊ ब्रज वनिता, दोऊ को कन्त अवाची।
यह अजान पति मरम न जानै, वह भरता सौं राची ॥१॥
वह सुबुद्धि आपा परिपूरन, आपा पर पहिचानै।
लख लालन की चाल चपलता, सौत साल उर आनै ॥२॥
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली।
काहू समय पाय सखियन सौं, कहै पुनीत पहेली ॥३॥

मोरे आंगन बिरवा उलह्यो, बिना पवन भकुलाई।
ऊँचि डाल वड़ पात सघनवां, छाँह सौत के जाई ॥४॥
बोली सखी बात मैं समुझी, कहूं अर्थ अब जो है।
तेरे घर अन्तर घट नायक, अद्भुत बिरवा सोहै ॥५॥
ऊँचो डाल चेतना उद्धत, बड़े पात गुण भारी।
ममता वात गात नहिं परसे, छकनि छाँह छतनारी ॥६॥
उदय स्वभाव पाय पद चंचल, तातैं इत उत डोलै।
कवहूं घर कवहूं घर बाहिर, सहज सरूप कलोलै ॥७॥
कवहूं निज संपति आकर्षै, कवहूं परसै माया।
जब तन को त्योंनार करै तब, परै सौनि पर छाया ॥८॥
तोरे हिए डाह यों आवै, हौं कुलीन वह चेरी।
कहै सखी सुन दीन दयाली, यहै हियाली तेरी ॥९॥

कुमति और सुमति दोनों आत्मब्रज की वनिताएँ हैं, दोनों का पति चैतन्य है। कुमति पति के रहस्य को नहीं जानती है और सुमति उसी के प्रेम में मग्न रहती है।

आत्म ज्ञान से परिपूर्ण सुमति, अपने और पराये को जानती है। जब कभी कुमति के वश में होकर उसका पति चैतन्य चपलता की चाल चलता है तब उसके हृदय में भारी ठेस लगती है।

सुमति अपनी सहेलियों के संग खेल, हँसी और क्रीड़ा करती है एक दिन मौका पाकर वह एक पहेली कहती है।

हे सखियो! मेरे आंगन में एक पेड़ लहलहा रहा है उसकी ऊँची डालिएं तथा लम्बे और घने पत्ते हैं। वह बिना हवा के लहराता है परन्तु उसकी छाया सौत के घर जाती है!

तब एक सखी बोली, हे रानी! मैं समझी, सुन इसका अर्थ कहती हूँ।

तेरे हृदय घर में चैतन्य रूपी एक अद्भुत वृक्ष शोभित हो रहा है। प्रकाशमान चेतना ही उसकी ऊँची डालें हैं और गुण ही उसके घने और लम्बे पत्ते हैं। उसको ममतारूपी हवा नहीं छू पाती, प्रेम मग्नता ही चारों ओर फैलने वाली उसकी छाया है।

कर्म के उदय से चंचल होकर वह इधर-उधर डोलता है और कभी वह अपने घर और कभी बाहिर सहज रूप से क्रीड़ा करता है।

कभी वह अपनी आत्म सम्पत्ति की ओर आकर्षित होता है और कभी माया का आलिंगन करता है जिस समय वह अपने मनोविकारों को फैलाता है उस समय कुमति पर उसकी छाया पड़ती है।

तब तेरे हृदय में यह डाह पैदा होती है कि मैं कुलीन हूँ और कुमति दासी है उसके यहाँ छाया क्यों जाती है। हे दोनों पर दया करनेवाली सखी! यही तेरे हृदय की पीड़ा है।

अध्यात्म फाग

इसमें २५ छन्दों द्वारा आत्म फाग का वर्णन किया गया है। आत्मा नायक कर्मों की होली जलाता है, और धर्म को फाग खेलता है।

अध्यातम बिन क्यों पाइए हो, परम पुरुष को रूप।
अघट अंग घट मिलि रह्यो हो, महिमा अगम अरूप॥
माया रजनी लघु भई हो, समरस दिन शशि जीत।
मोह पंक की थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत॥

शुभ दल पल्लव लहलहे हो, आयो सहज वसंत।
सुमति कोकिला गहगही हो, मन मधु कर मयमंत ॥
सुरति अग्नि ज्वाला जगी हो, अष्ट कर्म वन जाल।
अलख अमूरति आत्मा हो, खेले धर्म धमाल ॥
परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग।
आठ काठ सब जल बुझे हो, गई तताई भाग ॥

अध्यात्म (आत्म-ज्ञान) के विना ईश्वर का रूप किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। जिसकी महिमा अगम्य और अनूठी है जो अगोचर होने पर भी घट के अन्दर समाया हुआ है।

माया रात्रि लघु हो गई समतारस रूपी सूर्य की विजय हुई वह बढ़ने लगा।

मोह कीचड़ की स्थिति कम हो गई और संशय रूपी शिशिर काल समाप्त हो गया।

शुभ भाव दलरूपी पल्लव लहराने लगे और सहज आनन्द रूपी वसंत का आगमन हुआ। सुमति कोकिल बोलने लगी और मनरूपी भौंरा मदोन्मत्त हो उठा।

आत्म मग्नतारूपी अग्नि ज्वाला प्रज्वलित हुई जिसने अष्ट कर्म वन को जला डाला। अमूर्ति और अगोचर आत्माधर्म रूपी फाग खेलने लगा।

आत्मध्यान के वल से परम ज्योति प्रगट हुई, अष्ट कर्म रूपी काष्ट की होली में आग लगी और वह जलकर शान्त हो गई उसकी जलन नष्ट हो गई और आत्मा अपने शुद्ध शान्त रस रङ्ग में मग्न होकर शिवसुन्दरी से फाग खेलने लगा।

शांतिनाथ स्तुति

श्री शांतिनाथ तीर्थंकर कर्मों को नष्टकर शिव सुन्दरी से मिलने मोक्षपुरी को जा रहे हैं उसी समय शिव रानी मोक्ष नगर में बैठी हुई अपनी शांति सखी से बातचीत कर रही है उसका सरस वार्तालाप सुनिए।

सहि एरी! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नहिं घरे।
सहि एरी! मन उदधि अनंदा, सुख-कन्दा चन्दा देह धरे॥
चन्दा जिवां मेरा वल्लभ सोहे, नैन चकोरहि सुक्ख करै।
जग ज्योति सुहाई, कीरति छाई, बहु दुख तिमर वितान हरै॥
सहु काल विनानी अमृत वानी, अरु मृग का लांछन कहिए।
श्री शांति जिनेश बनारसि को प्रभु, आज मिला मेरी सहिए॥
सहि एरी! तू परम सयानी, सुर ज्ञानी रानी राज त्रिया।
सहि एरी! तू अति सुकुमारी, वर न्यारी प्यारी प्राण प्रिया॥
प्राण प्रिया लखि रूप अचंभा, रति रंभा मन लाज रही।
कल धौत कुरंग कौल करि केसरि ये सरि तोहि न होहिं कहीं॥
अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहिं लहिए।
मिलि या तुझ कन्त नरोत्तम को प्रभु, धन्य सयानी सहिए॥

सखी, आज का दिन बड़ा मनोहर है मेरे हृदय को हरने वाला अब तक घर नहीं आया।

हे सखी, मेरे हृदय समुद्र को आनंद देने वाला वह सुख का भंडार चन्द्रमा के समान शरीर को धारण करने वाला है।

चन्द्रमा के समान मेरा पति मेरे नेत्र चकोरों को सुख देने वाला है। संसार में उसकी सुहावनी ज्योति की बड़ाई छाई हुई है और वह दुख अंधकार के समूह को नष्ट करने वाला है।

उसकी अमृत वानी सदैव ही खिरती है और उसके चरणों में मृग का चिन्ह है।

हे सखी मेरा बड़ा सौभाग्य है वह मेरे स्वामी शांतिनाथ जिनेन्द्र मुझे आज मिल गए।

हे सखी! तू बड़ी चतुर, स्वर का ज्ञान-रखने वाली, राजा की प्रिय पत्नी महारानी है।

हे सखी! तू अत्यंत सुकुमारी पति के हृदय को हरनेवाली प्राणप्रिया है।

तेरे मनोहर रूप को देखकर आश्चर्य से चकित होकर, रति और रंभा अपने हृदय में लज्जित हो रही हैं। सुवर्ण, मृग, कमल, हाथी और सिंह तेरे अंगों की सुन्दरता की समता नहीं कर सकते।

हे नवेली, पति का अनुराग, सुहाग, सौभाग्य और गुणों का भंडार यह सब बड़े पुण्य से मिलता है। जो तुझे प्राप्त हुआ है। उत्तम मानवों का प्रभु, तेरा पति आज तुझे प्राप्त हो गया। हे चतुर सखी तू धन्य है।

स्तुति

करत अमर नर मधुप जसु, वचन सुधारस पान।
वन्दहु शान्ति जिनेश वर, वदन निशेश समान॥
गजपुर अवतारं शान्ति कुमारं शिव दातारं सुख कारं।
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं जित मारं॥
वर रूप अमानं अरितम भानं, निरुपम ज्ञानं, गत मानं।
गुण निकर स्थानं, मुक्ति वितानं, लोक निदानं, सध्यानं॥
हीर हिमालय हंस, कुन्द शरदभ्र निशाकर।
कीर्ति कान्ति विस्तार, सार गुण गण रत्नाकर॥

दुःकृति संनति धाम, काम विद्वेष विदारण।
मान मतंगज सिंह, मोह तरु दलन सुवारण॥
श्री शांति देव जय जित मदन, बानारसि वन्दत चरण।
भव ताप हारि हिमकर वदन, शांतिदेव जय जित करण॥

देवता लोग जिसके वचन रूपी अमृत रस का पान करते हैं जिसका शरीर चन्द्रमा के समान है उस शान्तिनाथ जिनेन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ।

गजपुर में जन्म लेनेवाले शान्तिकुमार, मुक्ति देनेवाले, सुख करने वाले, अनुपम रूप और आचरण वाले जगत के आधार, और कामदेव के जीतने वाले हैं।

वे अनुपम रूप के धारक, शत्रु अन्धकार को सूर्य के समान, उपमा रहित ज्ञान के धारी, अभिमान से रहित, गुणों के समुद्र, मुक्ति के चंदोवे और संसार को नष्ट करने वाले मेरे शुभ ध्यान के साधन हैं।

जिनकी कीर्ति हीरा, हिमालय, हंस, कुन्दकली, शरद्काल के बादल और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और महान है। जो उत्तम गुणों के समुद्र हैं जो पाप की संतति को नष्ट करने को प्रचंड धूप है, काम और राग द्वेष को जीतने वाले हैं, घमंड हाथी के लिए सिंह और मोह वृक्ष को नष्ट करने के लिए जो तीक्ष्ण कृपाण हैं।

उन मदन विजयी शान्तिनाथ स्वामी के चरणों को मैं बनारसीदास, नमस्कार करता हूँ संसार ताप को हरने वाले हिमकर के समान हे शान्तिदेव आपकी जय हो। आप मुझे इन्द्रियों पर विजय प्रदान कीजिए।

सोलह तिथि—

इसमें १६ छन्दों में कविवर ने सोलह तिथियों की बड़ी सुन्दर कल्पना की है अनुप्रासों का सरस प्रयोग किया है।

परिवा प्रथम कला घट जागी, परम प्रतीति रीतिरस पागी,
प्रति पद परम प्रीति उपजावै, वहै प्रतिपदा नाम कहावै।
पूरन पूरण ब्रह्म विलासी, पूरण गुण पूरण परगासी,
पूरण प्रभुता पूरण मासी, कहै वनारसि गुण गण रासी॥

फुटकर दोहे

इन ४१ दोहों में नीति तत्वज्ञान और उपदेश भरा हुआ है प्रत्येक दोहा सरस और सरल है।

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की द्विविधा मानकर, भये एक सों दोय॥
इस माया के कारणै, जेर कटावहि सीस।
ते सूरख क्यों कर सकैं, हरि भक्तन की रीस॥
जो मंहत है ज्ञान विन, फिरैं फुलाए गाल।
आप मत्त औरन करैं, सो कलि मांहि कलाल॥
जो आशा के दास ते, पुरुष जगत के दास।
आशा दासी जासकी, जगत दास है तास॥

गोरखनाथ के वचन

इसमें ७ छन्द हैं प्रत्येक छन्द अनूठे ज्ञान रहस्य से भरा हुआ है, भाव बहुत ही सरल है।

जो घर त्याग कहावै जोगी, घरवासी को कहै सुभोगी।
अन्तर भाव न परखै कोई, गोरख वोले मूरख सोई॥

पढ़ ग्रंथहि जो ज्ञान बखानें, पवन साध परमारथ मानें।
परम तत्व के होहिं न मरमी, कह गोरख सो महा अधर्मी॥

सुमति देवी के एक सौ आठ नाम

इसमें सुमति के एक सौ आठ नामों का वर्णन ९ छंदों में किया है कविता अलंकार पूर्ण है।

सिद्धा, संजमवती, स्याद्वादिनी, विनीता।
निर्दोषा, नीरजा, निर्मला, जगत अतीता॥
सुमति, सुबुद्धि, सुधी, सुबोधनिधि, सुता, पुनीता।
शिवदायिनी, शीतला, राधिका, मणि अजीता॥
कल्याणी, कमला, कुशलि, भव भंजनी भवानि।
लीलावती, मनोरमा, आंनदी, सुखखानि॥

षट् दर्शन

इसमें ८ छन्द हैं इसमें सभी दर्शनों का सुन्दर संक्षिप्त वर्णन है।

वेदान्त

देव ब्रह्म, अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष।
वेद ग्रंथ, निश्चय धरम, मत वेदान्त विशेष॥

जैन

देवतीर्थंकर, गुरु यती, आगम केवलि वैन।
धर्म अनंत नयात्मक, जो जानै को जैन॥

नवसेना विधान

इसमें १२ छन्द हैं। सेना, सेनामुख, अनीकनी, अक्षोहिणी आदि सेना भेदों का वर्णन है।

अनीकनी

मत्त मतङ्ग सात अरु वीस, पवन वेग रथ सत्ताईस।
अनुग एक सौ पैंतिस ठीक, हय इकयासी सहित अनीक॥

फुटकर कवित्त

इसमें २२ कवित्त हैं इसमें विद्याओं के नाम तथा ग्रह ज्योतिष आदि सभी विषयों का वर्णन है।

विद्याओं के नाम

छप्पय छन्द

ब्रह्म ज्ञान, चातुरीवान, विद्या हय वाहन।
परम धरम उपदेश, वाहुवल जल अवगाहन॥
सिद्ध रसायन करन, साधि सप्तम सुर गावन।
वर सांगीत प्रमान, नृत्य वाजित्र वजावन॥
व्याकरण पाठ मुख वेद धुनि, ज्योतिष चक्र विचार चित।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दश चार मित॥

नवरत्नों के स्वामी

मुकता को स्वामी चन्द, मूंगानाथ महीनन्द,
गोमेदक राजा राहु, लीलापती शनी है।
केतु लहसुनी, सुर पुष्पराज देव गुरु,
पन्ना को अधिप बुध, शुक्र हीराधनी है॥
याही क्रम कीजे घेर, दक्षिणावरत फेर,
माणिक सुमेर वीच प्रभु दिनमनी है।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठौर,
कौल कैसे रूप नौ ग्रही अनूप वनी है॥

पद

हे भाई! ईश्वर की प्राप्ति इस तरह हो सकती है। सुन और समझ।

ऐसे यों प्रभु पाइए, सुन पंडित प्रानी।
ज्यों मथि माखन काढ़िये, दधि मेलि मथानी॥
ज्यों रस लीन रसायनी, रस रीति अराधै।
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै॥
आप लखै जब आप को, दुविधा पर मेटै।
साहिब सेवक एक से, तब को किहिं भेंटै॥

हे ज्ञानी पंडित! ईश्वर की प्राप्ति इस तरह होती है जैसे दही में मथानी डालकर उसको मथकर मक्खन निकाला जाता है।

जैसे रस में मग्न हुआ रसायनी रस की आराधना करता हुआ रसायन को पाता है।

उसी तरह ईश्वर को प्राप्त करनेवाला भव्य जीव अपने घट में अपनी ही साधना करता है। और जिस समय आप में अपने आपका निरीक्षण करता है उसी समय वह खुद ही ईश्वर बन जाता है।

मन की दुविधा नष्ट हो जाती है और साहिब और सेवक एक हो जाते है तब कौन किसकी भेंट करें।

× × ×

हे मूर्ख! ईश्वर की प्राप्ति इस तरह नहीं होती है। अरे! तू कहाँ भटक रहा है।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइए, सुन मूरख प्रानी।
जैसे निरख मरीचिका, मृग मानत पानी॥
माटी भूमि पहार की, तुहि संपत्ति सूझै।
प्रगट पहेली मोह की, तू तऊ न बूझै॥
ज्यों मृग नाभि सुवाससों, ढूढ़त वन दौरे।
त्यों तुझ में तेरा धनी, तू खोजत औरे॥

हे मूर्ख प्राणी! इस तरह ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जैसे मृग माया मरीचिका को देखकर पानी समझता है। और उसके लिए दौड़ता है उसी तरह पहाड़ की मट्टी तुझे संपत्ति सी मालूम पड़ती है। अरे! इस मोह की पहेली को तू नहीं जानता है। जिस तरह कस्तूरिया मृग अपनी नाभि में कस्तूरी रखता है और उसे ढूढ़ने के लिए जंगल में दौड़ता है उसी तरह तेरा स्वामी तुझमें ही छिपा है परन्तु हे मूर्ख! तू उसे कहीं और जगह ही खोजता फिरता है। तुझे वह कहाँ मिलेगा।

अध्यात्म पद

आत्मा के मूल नक्षत्र में ज्ञान पुत्र का जन्म हुआ है उसकी करामात देखिए।

मूलन बेटा जायो रे साधो, मूलन० जाने खोज० कुटुम्ब सब खायो साधो० मूलन०

जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोइ भाई।
काम क्रोध दोइ काका खाए, खाई तृपना दाई॥
पापी पाप परोसी खायो, अशुभ कर्म दोइ मामा।
मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा॥

दुरमति दादी विकथा दादो, मुख देखत ही मूओ।
मंगलाचार बधाए बाजे, जब यो बालक हूओ॥
नाम धर्यो बालक को सूधो, रूप वरन कछु नाहीं।
नाम धरंते पांडे खाए, कहत बनारसि भाई॥

नाममाला

यह छोटासा एक कोष ग्रन्थ है। महाकवि धनंजय ने संस्कृत में नाममाला कोष की रचना की है यह उसी का सुन्दर अनुवाद है। अनुवाद सुन्दर है बालकों तथा अन्य साधारण साहित्य प्रेमियों के कंठ करने योग्य है।

आगे इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

आकाश के नाम

खं विहाय अंबर गगन, अंतरीक्ष जगधाम।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ये अकाश के नाम॥

काल के नाम

यम कृतांत अंतक त्रिदश, आवर्ती मृतथान।
प्राण हरण, आदित तनय, काल नाम परवान॥

बुद्धि के नाम

पुस्तक धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि॥

विद्वान् के नाम

निपुण विलक्षण, विबुध बुध, विद्याधर विद्वान्।
पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान॥

कलावंत, कोविद कुशल, सुमन दत्त धीमंत।
ज्ञाता, सज्जन, बृह्मविद, तज्ञ गुणीजन संत॥

असत्य के नाम

अजारथ मिथ्या, मृषा, वृथा असत्य अलीक।
मुधा मोघ निःफल वितथ, अनुचित, असत अठीक॥

शुद्ध जीव द्रव्य के नाम

परम-पुरुष परमेसर परम-ज्योति,
परब्रह्म पूरण परम परधान है।
अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज,
निरद्वंद मुकत मुकुंद अमलान है॥
निरावाध निगम निरंजन, निरविकार,
निराकार संसार सिरोमणि सुजान है।
सरव दरसि, सरवज्ञ सिद्ध स्वामी शिव,
धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है॥

जीव द्रव्य के नाम

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार,
बुद्धिरूप अबुध्र अशुद्ध उपयोगी है।
चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत,
प्राणवंत प्राणी जंतु भूत वृष भोगी है॥
गुणधारी, कलाधारी भेषधारी, विद्याधारी,
अंगधारी संगधारी, योगधारी जोगी है।
चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम,
करम को करतार परम वियोगी है

सत्य के नाम

सम्यक् सत्य अमोघ सत निःसंदेह विनधार।
ठीक यथा तथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार॥

अर्द्ध कथानक

इसमें कविवर ने अपने ५५ वर्ष की छोटी सुख दुख की बातों का बड़े अच्छे ढंग से वर्णन किया है। यह ग्रंथ उन्हें जैन साहित्य के ही नहीं हिन्दी साहित्य के बहुत ही ऊँचे स्थान पर आरूढ़ करा देता है। इसके द्वारा वे हिन्दी साहित्य में एक अपूर्व कार्य करके बतला गए हैं कि भारतवासी आज से तीन सौ वर्ष पहले भी इतिहास और जीवन चरित का महत्व समझते थे और उनका लिखना भी जानते थे हिन्दी में ही क्यों सारे भारतीय साहित्य में यही एक आत्म चरित है जो आधुनिक समय के आत्म चरितों की पद्धति पर लिखा गया है हिन्दी भाषा भाषियों को इस ग्रंथ का अभिमान होना चाहिए। यह ग्रंथ बड़ी शीघ्रता से लिखा गया है इसी से अन्य कविताओं की तरह इसमें यमक अनुप्रास आदि पर ध्यान नहीं दिया गया है केवल बीती हुई बातों का ही वर्णन करना इसका मुख्य उद्देश्य रहा है फिर भी इसमें कहीं २ बड़े ही मनोहर तथा स्वाभाविक पद्य हैं।

इसमें सब मिलाकर ६७३ चौपाई तथा दोहे हैं। कविवर के जीवन चरित्र में इसके अनेक पद्य यत्र तत्र उद्धृत किए गए हैं इसलिए इसका परिचय अलग से नहीं दिया गया है।

भैया भगवतीदास

उस समय की काव्य प्रगति

उस समय शृंगार रस की धारा अबाधित रूप से वह रही थी विलास की मदिरा पिलाकर कवि लोग अपने को कृतकृत्य समझते थे। वे कामिनी के अङ्गों से बुरी तरह उलझे हुए थे उन्होंने कटि, कुच, केशों और कटाक्षों में ही अपनी कल्पना शक्ति को समाप्त कर दिया था। पातिव्रत और ब्रह्मचर्य का मज़ाक उड़ाने में ही वे अपनी कविता की सफलता समझते थे और "इह पाखै पतिव्रत ताखै धरो" के गीत गाने में ही उन्हें आनंद आता था।

कोई कवि नवीन दंपति की प्रेम लीलाओं, मान, अपमान और आँख मिचौनी में ही विचरण करता था तो कोई कुशल कवि कुलटाओं के कुटिल कटाक्षों, हावभाव, विलासों और नोक झोक में ही मस्त था।

कोई विलासी कवि, परपति पर आसक्त हुई कामिनियों के संकेत स्थानों के वर्णन में और कोई विरही, विरहिणियों के करुण रुदन, आक्रदन और विलाप में ही अपनी कल्पनाएं समाप्त कर रहा था।

कोई संयोगियों के 'लपटाने रहें पट ताने रहें' के पिष्ट पोषण में ही अपनी कविता की सफलता समझता था।

देवत्व और अमरत्व की भावनाएं समाप्त हो चुकी थीं, मुक्ति और जीवन शक्ति की याचना के स्थान पर कुत्सितता ने अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था।

उनकी दृष्टि में तो मुक्ति के अतिरिक्त और ही कोई दुर्लभ पदार्थ समाया हुआ था। कविवर देव जी उस दुर्लभ पदार्थ की तारीफ करते हैं आप कहते हैं 'जोग हू तैं कठिन संजोग परनारी को' परनारी के संयोग को आप योग से भी अधिक दुर्लभ बतलाते हैं आपकी दृष्टि में पत्नीव्रत और सच्चरित्रता का तो कोई मूल्य ही नहीं था।

उस समय के भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण और राधिका के पवित्र भक्तिमार्ग का आश्रय लेकर उनकी ओट में अपनी मनमानी वासनामय कल्पनाओं को उद्दीप्त किया था। वासनाओं और शृंगार में वे इतने ग्रस्त हो गये थे कि अपने उपास्य देवता को गुंडा और लंपट बनाने में भी उन्होंने किसी प्रकार का संकोच नहीं किया।

एक स्थान पर भक्तवर नेवाज कवि व्रज वनिताओं को नीति की शिक्षा देते हुए कहते हैं। 'बावरी जो पै कलङ्क लग्यो तो निसङ्क है काहे न अङ्क लगावति' कलङ्क धोने का कविवर ने यह बड़ा अच्छा उपाय बतलाया है। रसखान सरीखे भक्त कवि भी इस अनूठी भक्ति लीला से नहीं बचे हैं आप का क्या ही सुन्दर पश्चाताप है 'मो पछितावो यहै जु सखी कि कलङ्क लग्यो पर अङ्क न लागी'। कृष्णजी की लीला का वर्णन करते हुए एक स्थान पर आप कहते हैं 'गाल गुलाल लगाइ, लगाइ कै अङ्क रिझाइ विदा कर दीनो'।

इस तरह भारत की महान् आत्माओं के साथ भद्दा मजाक किया गया और उनके पवित्र चरित्र को वासनाओं के नग्न चित्रों से सजाकर सर्व साधारण जनता के साम्हने रखकर उन्हें धोके में डाला गया और अपनी विषय वासनाओं की पूर्ति की गई।

इस भक्ति मार्ग के अन्दर परनारी सेवन और मदिरा पान की भावनाओं को प्रचंड किया गया और भारतीय प्रजा में नपुसंकता के बीज बोये गए।

ऐसे समय में कुछ कविगण ही अपने काव्य के आदर्श को सुरक्षित रख सके हैं।

जैन कवि तो कुत्सित श्रृंगार वर्णन से विलकुल अछूते ही रहे हैं। यह सब जैन धर्म की सुशिक्षा का ही परिणाम है कि जैन कवियों ने अपनी कविता को किसी प्रकार भी कलंकित नहीं होने दिया।

उन्होंने नीति, चरित्र और संयम की सरस फुलवाड़ी लगाई। वे अध्यात्म कुंज में समाधि के रस में मग्न रहे और आत्म तत्व में उन्होंने अपनी लौ लगाई।

उन्होंने अपनी कविता में अमरता का संगीत अलापा और वे जनता के पथ निदर्शक बने।

उनका काव्य संसार का गुरु बना धन्य है उनका कवित्व और धन्य है उनकी अभिलाषा।

जीवन रेखाएं

आगरा मुगल साम्राज्य का ऐतिहासिक स्थान रहा है। अधिकांश जैन कवियों को जन्म देने का सुयश भी आगरे को ही प्राप्त हुआ है। कविवर भूधरदास, आदि कवियों ने भी इसी स्थान पर जन्म लेकर काव्य की सरस धारा सरसाई है।

कविवर भगवतीदासजी का जन्म भी इसी आगरे में हुआ था। आपकी जन्म तिथि क्या थी इसका निश्चित पता अभी तक नहीं लगा है आपनें अपनी रचनाओं की प्रशस्ति में

परिचय नहीं दिया है। आपकी कविताओं में विक्रम संवत १७३१ के १७५५ तक का उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि आपका जन्म सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ ही में हुआ होगा। इसके प्रथम की अथवा आगे की आपकी कोई भी कविता अभी तक नहीं मिली है।

आपके पिता लालजी साहु आगरे के प्रसिद्ध व्यापारी थे आप ओसवाल वैश्य थे कटारिया आपका गोत्र था। जैनधर्म के श्रद्धानी होने पर भी आपके विचार उदार थे आपका हृदय विशाल था पक्षपात की वू आप में तनिक भी नहीं थी।

भैया भगवतीदासजी अपने पिता के आज्ञाकारी सुपुत्र थे। व्यापार में कुशल होने पर भी आपकी विशेप रुचि काव्य की ओर प्रवाहित हुई। आपने हिन्दी और संस्कृत भापा का अच्छा अभ्यास करने के पश्चात् साहित्यक ग्रंथों का भी भले प्रकार अध्ययन किया था।

संस्कृत और हिन्दी के ज्ञाता होने के अतिरिक्त आप फारसी, गुजराती, मारवाड़ी, वँगला आदि भापाओं पर भी अच्छा अधिकार रखते थे कुछ कविताएं तो आपने केवल गुजराती तथा फारसी में ही की है।

आपका स्वभाव वड़ा सरल था और सादगी तो आपकी जीवन सहचरी ही थी।

कविता से आपको हार्दिक स्नेह था आप जो कुछ भी रचना करते थे उसमें अपने को पूर्ण तल्लीन कर लेते थे सुरुचि का आप पूरा ध्यान रखते थे।

आपकी कविता का प्रत्येक पद्य हृदयग्राही और वोध प्रद है उसका पढ़ने वाला उसमें से कुछ न कुछ अपने कल्याण

की वस्तु प्राप्त कर लेता है उसे मार्ग भ्रम नहीं होता और न वह पथ-भ्रष्ट होता है किन्तु अपना इच्छित सरल और सुखद मार्ग प्राप्त कर लेता है।

कविवर की कविता में उसे शांति का रम्य छाया स्थल प्राप्त होता है वहाँ कुछ समय विरम कर वह शांति का अनुभव करता है और शक्ति प्राप्त कर आगे बढ़ने के लिए समर्थ होता है।

पवित्र हृदय कवि

केशवदासजी हिन्दी के प्रसिद्ध शृंगारी कवि हो गए हैं वृद्धावस्था में भी आपकी शृंगार लालसा कम नहीं हुई थी। केश सफेद हो जाने पर भी आपका हृदय विलास कालिमा से काला ही बना था। वृद्धावस्था के कारण आप अपनी वासनाओं की पूर्ति करने में अशक्य हो गए थे, युवती बालाएं सफेद केशों को देखकर आपके निकट नहीं आती थीं इससे आपका हृदय अत्यंत कष्ट पाता था आप इस कष्ट को सहन नहीं कर सकते थे आपने कष्ट का वर्णन निम्न पद्य द्वारा किया है:—

केशव केशनि असिकरी, जैसी अरि न कराय।
चन्द्र वदन मृग लोचनी; बाबा कहि मुरि जाय॥

इससे आपकी शृङ्गार प्रियता का पूर्ण परिचय मिलता है। आपने रसिकों का हृदय संतुष्ट करने के लिए रसिक प्रिया नामक एक ग्रंथ बनाया है जिसमें नारी के नख शिख तक सभी अङ्गों की अनेक तरह के अलंकारों और उपमाओं द्वारा जी भरके प्रशंसा की है।

भैया भगवतीदासजी को उसकी एक प्रति प्राप्त हुई थी— भैयाजी तो आदर्श वादी कवि थे उन्हें झूठी तथा कुत्सित प्रशंसा

कब पसन्द आती आपने उसकी पृष्ठ पर निम्न कवित्त लिखकर उसे वापिस लौटा दी।

बड़ी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत वदबोय भरी।
फोड़ा आदि फुनगुनी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी॥
शोणित हाड़ मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरख कर केशव! 'रसिक प्रिया तुम कहा करीं?

केशव ! तुमने रसिक प्रिया क्या की ? तुम भ्रम में भूल गए। तुम मोह सागर में कितने नीचे गिर गए हो। कितनी असत् कल्पनाएं करके तुमने अपने आत्मा को ठगा है। अनेक भोले भाले युवकों के हृदयों में कुत्सित भावनाओं को प्रोत्साहित किया है। और झूठी प्रशंसा करके कविता देवी को कलंकित कर डाला है।

उनकी कविता में कितनी सत्यता थी। संसार की माया में फँसे हुए अज्ञानी मानवों को नारियों के अङ्गों की अश्लील ढंग से चित्रण करके उसमें फँसाने वाले कवियों के प्रति उनका कैसा उत्तम उपदेश था। कितनी दया थी उनके हृदय में उन शृंगारी कवियों के प्रति ! हाय ! केशव ! रसिक प्रिया तुम कहा करी !

क्या नारियों के अंगों पर दृष्टि गड़ाए रहना ही कवि कर्म है क्या उनके कटाक्षों और हावभाव विलासों में मग्न रहना ही कवि धर्म है तुमने जिसकी प्रशंसा करने में अपने अमूल्य मानव जन्म के बहुमूल्य समय को नष्ट कर दिया थोड़ा उसका अंतर्तम तो देखो ! नहीं नहीं कवि कर्म महान है। उसके ऊपर जनता के उद्धार का कठिन भार है कविता केवल मौज की वस्तु

नहीं है। उसपर देश और समाज के उत्थान का कठिन उत्तर-दायित्व है।

यह था कविवर भगवतीदासजी की कविता का आदर्श और उनकी अपूर्व पवित्रता का एक उदाहरण। उनका लक्ष्य नारी निंदा की ओर नहीं था किन्तु आदर्श पथ से भ्रष्ट हुए कवि को उपदेश देना ही उनका उद्देश्य था।

नारी को वह पवित्रता और महानता का प्रतिनिध समझते थे। उसे वह केवल विलास की वस्तु नहीं मानते थे किन्तु जब कोई उस पवित्र वस्तु को विलास की ही सामग्री बनाकर उसके गौरवमय पवित्र शरीर की केवल वासना भोग और विलास के साथ ही तुलना करता है तब उनका पवित्र हृदय चोट खाता है तब वे उसकी भर्त्सना करते हुए उसका नग्न चित्र साम्हने रख देते हैं। इसी प्रकार बाबा सुन्दरदासजी ने जो कि वेदान्त विषय के अच्छे कवि थे रसिक प्रिया की बहुत निंदा की है।

कवित्व शक्ति

भैया भगवतीदासजी उन श्रेष्ठ कवियों में से हैं जिन्होंने अपने काव्य की धारा वैराग्य, वेदान्त नीति और भक्ति क्षेत्र में बहाई है।

आपके काव्य में संसार की मृग तृष्णा में पड़े हुए पथिकों के लिए आत्म ज्ञान और शांति का सुन्दर झरना प्राप्त होता है विषय वासना के दल दल में फँसे हुए युवकों के लिए कर्तव्य मार्ग और नीतिज्ञान की सुन्दर शिक्षा मिलती है।

वास्तव में सत् काव्य वही है जो भूले हुए पथिकों को सत्मार्ग पर लगादे, तड़पते हुए को सान्त्वना प्रदान करे और जीवन सुधार के मार्ग को प्रशस्त बनादे। आपके काव्य में यह सभी गुण पद पद पर प्राप्त होते हैं।

आपने अपनी कविता की रचना केवल जनता को अनुरंजित करने अथवा राजा महाराजाओं को रिझाने के लिए नहीं की है और न आपको किसी प्रकार के पुरष्कार का ही लोभ था आपने लोक कल्याण और आत्मोद्धार के लिए काव्य का आदर्श रक्खा है आपका काव्य प्रदर्शक प्रदीप है उससे आत्म प्रकाश की उज्ज्वल किरणें प्रकाशित होती हैं।

आप व्यवहार ज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे सर्व साधारण के हृदय को परखे हुए थे और जनता को किस प्रकार उपदेश देना यह आप खूब जानते थे।

आपकी कविता अलंकार और प्रसाद गुण से पूर्ण है। जनता की रुचि और सरलता का आपने काव्य में पूर्ण ध्यान रक्खा है भाषा प्रौढ़ और शब्द कोष से भरी हुई है। उर्दू और गुजराती के शब्दों का आपने कहीं कहीं बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है।

सरलता आपकी कविता का जोवन है और थोड़े शब्दों में अर्थ का भंडार भर देना यह आपके काव्य की खूबी है। सरसता और सुन्दरता के साथ आत्मज्ञान का आपने इतना मनोहर संबंध जोड़ा है कि वह मानवों के हृदयों को अपनी ओर आकर्षित किए बिना नहीं रहता।

आपकी रचनाओं का सुन्दर संग्रह ग्रंथ ब्रह्म विलास है इसमें आपके द्वारा रचित ६७ कविताओं का संग्रह है। इसमें

कोई २ रचनाएं इतनी वड़ी हैं कि वे एक एक स्वतंत्र ग्रंथ के समान हो गई हैं।

सभी कविताएँ काव्य की तमाम रीतियों और शब्दालंकार तथा अर्थालंकार से पूर्ण हैं। अनुप्रास और यमक की झन्कार भी आपकी कविताओं में यथेष्ट है।

आपने अन्तर्लापिका, वहिर्लापिका और चित्र वद्ध काव्य की भी रचना की है।

आपकी परमात्म शतक नामक कविता चमत्कृत भावों और अलंकारों से पूर्ण है अन्तर्लापिकाएं और वहिर्लापिकाएं भी अत्यंत मनोरंजक है।

यहाँ ब्रह्म विलास की कुछ रचनाओं का थोड़ा सा परिचय कराया जाता है पाठक देखेंगे उनमें कितनी सरसता, कवित्व और उपदेश है।

हमारी भावना है कि आप जैसे अध्यात्मिक कवियों का भारत में पुनः मान हो और आत्म ज्ञान की मनोहर तान से भारत फिर एक बार गूंज उठे।

ब्रह्म विलास

पुण्य पच्चीसिका

इसमें पच्चीस सुन्दर कवित्त हैं जिसमें पुण्य का फल और उसके करने का आदेश दिया गया है।

मंगला चरण

इस पद्य द्वारा कविवर अपने इष्ट की शक्ति का परिचय कराते हैं इसमें वड़ा सुन्दर शब्दानुप्रास है।

मोह कर्म जिह हरयो, करयौं रागादिक नष्टित।
द्वेष सवै परिहरयो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित॥
मान मूढ़ता हरिय, दरिय माया दुख दायिन।
लोभ लहर गति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन॥
केवल पद अवलंवि हुआ, भव समुद्र तारन तरन।
त्रयकालचरनवंदतभविक, जयजिनंदतुहपयशरन॥

जिन्होंने बलवान मोह को जीत लिया है, राग द्वेष का नाश कर दिया है, क्रोध को पछाड़ डाला है, घमंड और मूढ़ता का मान मर्दन कर दिया है, दुख की देने वाली माया को मरोड़ डाला है, लोभ लहर की चाल को रोक दिया है, जिन्हें आत्म-ज्ञान रूपी रसायन प्राप्त हुई है और जो पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर संसार सागर से पार होकर दूसरों को पार उतारते हैं उन जिनेन्द्र देवकी भगवतीदास वंदना करते हैं। और चरण शरण की याचना करते हैं।

कविवर ने सत्य श्रद्धानी समदृष्टि की प्रशंसा कितने मनोहर ढंग से की है उसकी मधुरता का थोड़ा सा आनन्द आप भी लीजिए।

स्वरूप रिझवारे से, सुगुण मतवारे से,
सुधा के सुधारे से, सुप्राणि दयावंत हैं!
सुबुद्धि के अथाह से, सुरिद्ध पातशाह से,
सुमन के सनाह से, महा बड़े महंत हैं॥
सुध्यान के धरैया से, सुज्ञान के करैया से,
सुप्राण परखैया से, शकती अनंत हैं।
सवै संघ नायक से, सवै बोल लायक से,
सवै सुख दायक से, सम्यक के संत हैं॥

जो अपने आप पर ही मोहित हैं, आत्म गुणों में मस्त हैं, आत्म सुधा के समुद्र हैं और प्राणियों पर करुणा रखने वाले हैं। जो अथाह बुद्धि वाले हैं, आत्म वैभव के बादशाह हैं, अपने मन के मालिक हैं और बड़े महन्त हैं। जो शुभ ध्यान के रखने वाले हैं, शुभ ज्ञान के करने वाले हैं और आत्म शक्ति के परखने वाले, अनंत शक्ति के धारक हैं, ऐसे सर्व संघ के नायक उत्तम उपमाओं के धारक सबको सुख देने वाले सत्य के श्रद्धानी संत पुरुष होते हैं।

कविवर पुण्य पाप की महत्ता का वर्णन किस ढंग से करते हैं।

ग्रीषम में धूप परै तामें भूमि भारी जरै,
फूलत है आक पुनि अति ही उमहि कै।
वर्षा ऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष कोई फरै,
जरत जवासा अघ आपुही तै डहि कै॥
ऋतु को न दोष कोऊ पुण्य पाप फलै दोऊ,
जैसे जैसे किए पूर्व तैसे रहै सहि कै।
केई जीव सुखी होहिं केई जीव दुखी होहिं,
देखहु तमासो भैया न्यारे नेकु रहि कै॥

गर्मी में तेज धूप पड़ती है उससे समस्त भूतल जलता है। परन्तु आक वृक्ष बड़ी उमंग के साथ फूलता है।

वर्षा ऋतु में मेघ बरसता है जिससे चारों ओर हरियाली हो जाती है अनेकों वृक्ष फलते फूलते हैं परंतु जवासे का पेड़ अपने आप ही जलकर गिर पड़ता है। हे भाई। इसमें ऋतु का कोई दोष नहीं है यह पुण्य पाप का फल है जिसने जैसे कर्म किए हैं उसी तरह उसे सहना पड़ते हैं। कोई जीव पुण्य के कारण सुखी होते हैं और कोई पाप के सबब से दुखी होते हैं।

हे भाई। तू पुण्य और पाप दोनों से अलग रह कर संसार का तमाशा देख।

पुण्य के द्वारा प्राप्त हुई संसार के वैभव को देखकर अभिमान मत कर ! देख यह वैभव कैसा ।

धूमन के धौरहर देख कहा गर्व करै,
ये तो छिन माहिं जांहि पौन परसत ही।
संध्या के समान रँग देखत ही होय भँग,
दीपक पतंग जैसे काल गरसत ही॥
सुपने में भूप जैसे इन्द्र धनु रूप जैसे,
ओस बूँद धूप जैसे दुरै दरसत ही।
एसोई भरम सब कर्मजाल वर्गणा को,
तामें मूढ़ मग्न होय मरै तरसत ही॥

अरे भाई। इन धुएं के मकानों को देखकर क्या घमंड करता है ये तो हवा के लगते ही एक क्षण में ही नष्ट हो जाँयेगे। संध्या के रङ्ग के समान देखते ही देखते छिन्न भिन्न हो जाँयगे और दीपक पर उड़ते हुए पतंग जैसे काल के मुँह में चले जाँयगे। ये सब स्वप्न का राज्य, इन्द्र धनुष और ओस की बूँद की तरह क्षण भर में ही नष्ट हो जाने वाले हैं। यह बड़े २ राज्य महल धन, दौलत, यौवन और विषय भोग सब कर्मों का भ्रम जाल है यह सब अनित्य और क्षणिक है। मूढ़ मनुष्य इसमें मग्न होकर इसी के लिए तरसते २ मर जाते हैं।

शत अष्टोत्तरी

इस काव्य में एक सौ आठ सुन्दर पद्य हैं। प्रत्येक पद्य शिक्षा और नीति से भरा हुआ है। इसमें कविवर ने आत्म ज्ञान की शिक्षा बड़े मनोहर ढंग से दी है। बड़ी सरस और हृदय-ग्राही रचना है। देखिये सुमति रानी चैतन्य को किस प्रकार समझा रही है।

इकबात कहूँ शिवनायक जी, तुम लायक ठौर कहाँ भटके।
यह कौन विचच्छन रीति गही, बिनु देखहि अच्छन सौं अटके॥
अजहूं गुण मानो तो शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके।
चिन मूरति आप विराजत हो, तिन सूरत देखे सुधा गटके॥

हे मोक्ष के पति चैतन्य! तुमको एक बात कहती हूं—क्या यह स्थान तुम्हारे रहने लायक है अरे! तुम कहाँ भटक रहे हो।

अरे! यह तुमने क्या अनोखी रीति पकड़ी है, बिना देखे परखे ही इन्द्रियों से अटक गये हो।

अगर तुम अब भी मेरा गुण मानते हो तो तुम से एक भलाई की बात कहती हूं? अरे! तुम अपने घट के पट क्यों नहीं खोलते।

तुम खुद अपने आप प्रकाशमान चैतन्य विराजमान हो उस अपनी सुन्दर रूप सुधा का पान क्यों नहीं करते।

चैतन्य राजा किस प्रकार बेहोश होता है।

काया सी जु नगरी में चिदानंद राज करै,
माया सी जु रानी पै मगन बहु भयो है।
मोह सो है फौजदार क्रोध सो है कोतवार,
लोभ सो वजीर जहाँ लूटिवे को रह्यो है॥
उदै को जु काजी मानै, मान को अदल जानै,
काम सेना का नवीस आई वाको कह्यो है।
ऐसी राजधानी में अपने गुण भूलि रह्यो,
सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है॥

शरीर नगर में चैतन्य राजा राज करता है वह माया नामक रानी पर बहुत ही आशक्त हो रहा है।

मोह उसका सेनापति है क्रोध कोतवाल है और लोभ मंत्री है जो उसे सदा से ही लूट रहा है।

कर्म का उदय रूपी काजी है मान उसका अर्दली बना है कामदेव उसका मुन्शी बनकर रहता है।

इस तरह की राजधानी में रहकर वह अपने गुणों को भूल रहा था जब उसे अपना ध्यान आया तब उसने ज्ञान को ग्रहण किया और आत्म राज्य का सुख भोगने लगा।

सुमति रानी चैतन्य की अज्ञानता का दिग्दर्शन कराती हुई उसे संबोधित करती हुई कहती है कि हे चैतन्य राजा तुम कहाँ जा रहे हो।

ज्ञान प्रान तेरे ताहि नेरे तो न जानत हो,
आन प्रान मानि आन रूप मान रहे हो।
आतम के वंश को न अंश कहूं खुल्यो कीजे,
पुग्गल के वंश सेती लागि लहलहे हो॥
पुग्गल के हारे हार पुग्गल की जीते जीत,
पुग्गल की प्रीति संग कैसे वह वहे हो।
लागत हो धाय धाय, लागे न कछू उपाय,
सुनो चिदानंद राय कौन पंथ गहे हो॥

तू अपने भीतर अपने ज्ञान रूपी प्राणों को नहीं देखता और दूसरे इन्द्रिय और शरीर रूप गुणों को अपना मानकर उसी में मग्न हो रहा है।

आत्मा के वंश का शक्ति रूप जो अंश है उसे तो तू प्रकाशित नहीं करता है और पुद्गल (शरीर) के वंश से लिपटकर खुश हो रहा है।

तू शरीर के हारने पर हार और और जीतने पर जीत समझता है अरे भाई चैतन्य ! इसी तरह पुद्गल की प्रीति के साथ कैसे वहा जाता है।

दिन रात संसार के धंधे में ही बेहोश रहता है परन्तु कुछ प्रयत्न सफल नहीं होता। हे चैतन्य राजा! तुमने यह कौनसा मार्ग ग्रहण किया है।

देखिये इस पद्य में वह चैतन्य को किस प्रकार फटकार रही है।

कौन तुम? कहाँ आए? कौने वैराये तुमहिं,
काके रस राचे कछु सुध हू धरतु हो।
कौन है ये कर्म जिन्हें एक मेक मानि रहे,
अजहूं न लागे हाथ भांवरि भरतु हो॥
वे दिन चितारो जहाँ वीते हैं अनादि काल,
कैसे कैसे संकट सहे हू विसरतु हो।
तुम तो सयाने पै सयान यह कौन कीन्हों,
तीन लोक नाथ ह्वै के दीन से फिरतु हो॥

तुम कौन हो? कहाँ से आये हो! तुम्हें किसने बहका रक्खा है और तुम किसके रस में मस्त हो रहे हो इस बात का भी तुम कुछ खयाल रखते हो।

ये कर्म कौन हैं जिन्हें तुम अपने से एक मेक मान रहे हो ये तुम्हारे हाथ तो अब तक भी नहीं आए परन्तु तुम इनके फंदे में पड़कर संसार में चक्कर लगा रहे हो।

उन दिनों की याद करो जहाँ अनादि काल तक कैसे २ संकटों को सहन किया है क्या आज तुम उन्हें भूल रहे हो।

तुम तो बड़े चतुर हो परन्तु यह तुमने कौनसी चतुराई की है जो तीन लोक के नाथ होकर भी भिखारी की तरह फिरते हो।

आत्म रहस्य में मस्त होने के लिए कैसा प्रलोभन दिया जा रहा है।

कहाँ कहाँ कौन संग, लागे ही फिरत लाल,
आवो क्यों न आज तुम ज्ञान के महल में।
नैकहु विलोकि देखो, अंतर सुदृष्टि सेती,
कैसी कैसी नीकी नारि खड़ी है टहल में॥
एकन तै एक वनी सुन्दर सुरूप घनी,
उपमा न जाय गनी वाम की चहल में।
ऐसी विधि पाय कहूं भूलि हूं न पाय दीजे,
एतो कह्यो मान लीजे वीनती सहल में॥

हे लाल! तुम किस किस के साथ कहाँ कहाँ लगे फिरते हो आज तुम ज्ञान के महल में क्यों नहीं आते।

तुम अपने हृदय तल में जरा ज्ञान दृष्टि को खोलकर तो देखो! दया, क्षमा समता शांति आदि कैसी कैसी सुन्दर रमणिएँ तुम्हारी सेवा में खड़ी हुई हैं।

एक से एक सुन्दर और मनोहर रूप वाली हैं जिनकी तुलना संसार की कोई भी बालाएं नहीं कर सकती।

इस तरह के मनोरम साधन प्राप्त कर तुम भूलकर भी कहीं पाँव मत रखिए यह मेरी साधारण सी प्रार्थना आप सहज में ही स्वीकार कर लीजिए।

अच्छा अब सुमति रानी का सिखापन भी सुन लीजिए।

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु,
कौन विचसाहु जाहि ऐसे लीजियतु है।
दश द्यौस विषै सुख ताको कहो केतो दुख,
परि कै नरक मुख कोलों सीजियतु है॥

केतो काल वीत गयो, अजहू न छोर लयो,
कहूं तोहि कहा भयो ऐसो रीझयतु है।
आपुही विचार देखो कहिवे को कौन लेखो,
आवत परेखो तातैं कह्यो कीजियतु है॥

हे मेरे समझदार स्वामी! सुनो। तुम कुछ अपने नफे टोटे की तरफ भी देखते हो। यह कौनसा व्यापार तुमने इस तरह अपने हाथ में लिया है। दश दिन का तो यह विपय सुख है परन्तु इसका कितना दुःख है देखो! इसके बदले में नर्क में पड़कर कबतक जलना पड़ता है।

इस विपय सुख में मस्त हुए कितना काल वीत चुका परन्तु अब तक होश नहीं आया अरे यह क्या हो गया है कोई किसी पर इस तरह भी रीझता है।

आपही विचार देखिए। इसमें मेरे कहने की क्या बात है। आपको इस तरह देखकर मेरे दिल में चोट लगती है इसीलिए मैं आपसे कह रही हूँ।

अब चेतन्यराजा और सुमति रानी का मनोरंजक सुनिए और आनन्द लीजिए!

सुनो राय चिदानंद, कहो जु सुबुद्धि रानी,
कहै कहा वेर वेर नैकु तोहि लाज है।
कैसी लाज? कहो कहाँ हम कछु जानत न,
हमें इहां इंद्रिनि को विषै सुख राज है॥
अरेमूढ़! विपै सुख सेये तू अनंती वेर,
अजहूं अघायेनाहिं कामी शिरताज है।
मानुप जनम पाय, आरज सुखेत आय,
जो न चेतै हंसराय तेरो ही अकाज है॥

सुविद्ध—हे चैतन्य राजा सुनो।

चैतन्य—हे सुबुद्धि रानी ! कहो क्या कहती हो।

सुबुद्धि—हे राजा ! मैं बार बार क्या कहूं तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं आती।

चैतन्य—सुबुद्धि—लज्जा कैसी ? मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो यहाँ इन्द्रियों के विषय सुख राज्य में मग्न हो रहा हूं।

सुबुद्धि। अरे मूर्ख ! तूने अनंत बार विषय सुखों का सेवन किया परंतु तुझे आज तक तृप्ति नहीं तू बड़ा कामी है। तूने मनुष्य जन्म और आर्यक्षेत्र को पाया है। इस उत्तम जन्म को पाकर भी तू सावधान नहीं होगा और आत्म कल्याण नहीं करेगा तो हे चैतन्य तेरा ही बिगाड़ होगा। मेरा क्या जाता है।

सुमति रानी के उपदेश से आत्मज्ञान होने पर चैतन्य अपनी शक्ति का विचार करता हुआ कहता है—

जैसो वीतराग देव कहयो है स्वरूप सिद्ध,
तैसो ही स्वरूप मेरा यामें फेर नाहीं है।
अष्ट कर्म भाव की उपाधि मो मैं कहूं नाँहि,
अष्ट गुण मेरे सो तो सदा मोहि पांही हैं॥
ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहूं काल मेरे पास,
गुण जो अनंत तेऊ सदा मोहि मांहि है।
ऐसो है स्वरूप मेरो तिहुं काल सुद्ध रूप,
ज्ञान दृष्टि देखते न दूजी परछांही है॥

जैसा वीतराग देव ने मेरा सिद्ध के समान स्वरूप बतलाया है वैसा ही मेरा स्वरूप है इसमें थोड़ा सा भी अंतर नहीं है।

मेरे अन्दर अष्ट कर्मों के भाव की उपाधि कहीं भी नहीं है मेरे सुख, ज्ञान, शक्ति रूप अष्ट गुण सदा ही मेरे पास हैं।

मेरा ज्ञायक (संसार को जानने वाला) स्वभाव भूत, भविष्यत वर्तमान तीनों कालों में मेरे पास है और जो मुझमें अनंत गुण हैं वे भी हमेशा मेरे अन्दर रहते हैं।

तीनों कालों में मेरा ऐसा शुद्ध रूप, स्वरूप है। ज्ञान दृष्टि से देखने पर उसमें किसी दूसरे की छाया भी नहीं है।

खूब पढ़ा अध्ययन किया परन्तु बिना आत्म रहस्य के पहिचाने उसका क्या परिणाम होता है इसका वर्णन सुनिए।

जो पै चारों वेद पढ़े रचि पचि रीझ रीझ,
पंडित की कला में प्रवीन तू कहायो है।
धरम व्योहार ग्रंथ ताहू के अनेक भेद,
ताके पढ़े निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है॥
आतम के तत्व को निमित्त कहूं रंच पायो,
तोलों तोहि ग्रंथनि में ऐसे के बतायो है।
जैसें रस व्यंजनि में करछी फिरै सदीव,
मूढ़ता सुभाव सों न स्वाद कछु पायो है॥

तूने बड़े परिश्रम और प्रेम के साथ चारों वेदों को पढ़ लिया और पंडित की कला में तू चतुर कहलाने लगा।

व्यवहार धर्म ग्रंथों के अनेक भेद हैं उनको भी पढ़कर तू संसार में अत्यंत निपुण और प्रसिद्ध हो गया।

किन्तु जब तक तूने आत्म तत्व के रहस्य जानने का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया है तब तक तुझे ग्रंथों में इसी तरह जड़ बतलाया है जैसे कलछी हमेशा अनेक रसों के भोजनों में पड़ती है परन्तु अपने जड़ता स्वभाव के कारण वह कुछ भी स्वाद नहीं पाती है।

फारसी की कविता का एक पद्य

मान यार मेरा कहा दिल की चशम खोल,
साहिब नजदीक है जिसको पहचानिये।
नाहक फिरहु नांहि गाफिल जहान बीच,
शुकन गोश जिनका भली भांति जानिये॥
पावक ज्यों वसता है अरनी पखान मांहि,
तीस रोस चिदानंद इस ही में मानिए,।
पंज से गनीम तेरी उम्र साथ लगे हैं,
खिलाफइ से जानि तू आप सच्चा आनिये॥

हे मित्र! मेरा कहना मान दिल की आखें खोल! देख तेरे पास ही तेरा प्रभु है उसको पहचान।

बेहोश होकर व्यर्थ ही संसार में मत घूम। श्री जिनेन्द्र के उपदेश को अच्छी तरह से समझ।

जिस तरह लकड़ी और पत्थर में अग्नि समाई हुई है उसी तरह तेरे अन्दर ही शुद्ध आनंद मय चैतन्य बसा हुआ है।

पाँचों इन्द्रियों के विषय रूपी शत्रु तेरी आयु के साथ लगे हुए हैं इन्हें अपने पास से हटाकर तू अपने अत्मा को ठीक तरह से पहचान।

गुजराती कविता का एक पद्य

उहिल्या जीवड़ा हूँ तनै शूं कहूँ,
वली वली आज तू विषय विष सेवै।
विषयन फल अछै विषय थकी पाडुवा,
लाभ नी दृष्टि नं कां न वेवै॥

हजी शुं सीख लगी नथी कां तनै,
नरक मां दुःख कहिवे को न रवै।
आव्यो एक लो जाय पण एक तू,
एटला माटे कां एटलूं खेवै॥

हे बेहोश जीव! मैं तुझसे क्या कहूँ आज तू फिर बार-बार विषय विप का सेवन करता है।

अरे! विषयों के फलों को चखकर तू अब तक तृप्त नहीं हुआ तू अपने लाभ की तरफ क्यों नजर नहीं दौड़ाता है।

क्या तुझे अब तक शिक्षा नहीं लगी क्या तुझसे नरकों का दुख कहना अब भी बाकी रह गया है।

अरे भाई! तू अकेला आया है और अकेला ही जायगा तू इन सब संसारी संबन्धियों के लिए क्यों इतना पाप कमा रहा है।

अन्योक्तियां—

हे चैतन्य हंस! तुम किस तरह फँदे में फँस गए हो।

हँसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व सँवारे फंद।
तिहिं कुदाव में बंधि रहे, कैसे होहु सुछंद॥
कैसे होहु सुछंद, चंद जिस राहु गरासै।
तिमिर होय बल जोर, किरण की प्रभुता नासै॥
स्वपर भेद भासै न देह जड़, लखि तजि संसा।
तुम गुण पूरन परम, सहज अवलोकहु हंसा॥

हे चैतन्य हँस, तुमने अपने लिए स्वयंही हँस हँसकर फँदा बनाया है आज तुम उसी फँदे में फँसे हुए हो अब तुम स्वतंत्र कैसे हो सकते हो।

जिस तरह चन्द्रमा को, राहु ग्रस लेता है अथवा जब अंधकार का बल बढ़ जाता है तब वह किरणों की प्रकाश शक्ति को नष्ट कर देता है उसी तरह तुम पर भी कर्म का फंदा पड़ जाने के कारण तुम्हें अपना पराया कुछ भी नहीं सूझता।

हे चैतन्य! अब तुम संशय को छोड़कर अपने आप को देखो। यह शरीर जड़ है और तुम संपूर्ण गुणों से भरे हुए शुद्ध चैतन्य आत्मा हो।

हे तोते! तूने आम के धोखे में पड़कर सेमर का वृक्ष सेया इसमें इसमें तुझे क्या स्वाद मिला।

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आम के, यापै पूरण इच्छ॥
यापै पूरण इच्छ, वृच्छ को भेद न जान्यो।
रहे विषय लपटाय, मुग्धमति भरम भुलान्यो॥
फल माँहि निकसे तूल, स्वाद पुन कछू न हूआ।
यहै जगत की रीति देखि, सेमर सम सूवा॥

हे तोते! तेरी सारी होशियारी चली गई। तूने सेमर के वृक्ष की सेवा की। आम के धोखे में आकर तूने अपनी संपूर्ण इच्छाएं उसीसे सफल करना चाही हैं।

अरे! तूने वृक्ष का भेद न जाना। विषय सुख में फँसकर हे मूर्ख! तू भ्रम में भूल गया। धोखे में फँस गया।

अंत में फलों में से रुई निकली और कुछ भी रस नहीं मिला।

हे चैतन्य रूपी तोते इस संसार की रीति भी सेमर के वृक्ष की तरह है उसे तू देख और समझ। इसमें तुझे कुछ भी रस नहीं मिल सकता।

विना तत्व ज्ञान के किसी प्रकार भी मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती इसका सरस वर्णन सुनिए।

शुद्धि तैं मीन पियें पय वालक,
रासभ अंग विभूति लगाये।
राम कहे शुक, ध्यान गहे वक,
भेड़ तिरै पुनि मून्ड मुड़ाये॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग,
व्याल तिरै नित पौन के खाये।
येतो सबै जड़ रीति विचक्षन,
मोक्ष नहीं विन तत्व के पाये॥

यदि जल शुद्धि से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती तव तो मछलिएँ कव की मुक्त प्राप्त कर लेती इसी तहर दूध पीकर वालक भी मुक्त हो जाते।

यदि भस्म लगाने से ही ईश्वर मिल जाता तव गधा तो सदा ही भस्म में लोटता रहता है। यदि खाली राम २ रटने से ही पार हो जाते तव तो तोता पहले ही पार पहुँच जाता और यदि ध्यान से ही सिद्ध हो जाती तव वगुला तो सिद्ध कवका वन जाता।

यदि सिर घुटाने से शिव मिलती तव भेड़ तो प्रतिवर्ष ही अपना सारा शरीर घुटाती हैं और यदि वस्त्र रहित दिगंवर रहने से ही कोई ईश्वर वन जाता होता तव पशु तो हमेशा ही नग्न रहते हैं।

यदि आकाश में चलने से निर्वाण होता तव तो सभी पक्षी निर्वाण प्राप्त कर चुके होते। इसी तरह यदि हवा पीने से ईश्वरत्व मिल जाता तव सर्प तो ईश्वर ही वन गया होता।

हे भाई! ये सब बातें और भेष तो कोरे जड़ हैं बिना आत्म ज्ञान के केवल इनसे ही मुक्ति नहीं मिल सकती हैं।

सच्चे ब्रम्हचारी का स्वरूप—

पंचन सों भिन्न रहैं कंचन ज्यों काई तजै,
रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है।
कंचन के कुल ज्यों स्वाभाव कीच छुवै नाहिं,
वसै जल मांहि पै न ऊर्द्धता विसारी है॥
अंजन के अंश जाके वंश में न कहूं दीखै,
शुद्धता स्वभाव सिद्ध रूप सुखकारी है।
ज्ञान के समूह आत्म ध्यान में विराजि रह्यो,
ज्ञान दृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है॥

कीचड़ में पड़े हुए सोने की तरह जो पांचों इन्द्रियों के भोग विलासों से सदा ही अलग रहता है थोड़ा भी मलिन नहीं होता ऐसी जिसकी निराली चाल है।

जिस तरह सोने के कुल का स्वभाव है कि वह कीचड़ में रहने पर भी उसे नहीं छूता और कमल जल में रहने पर भी हमेशा जल से ऊपर ही रहता है उसी तरह जिसके अन्दर कर्म रूपी अंजन कहीं भी नहीं दिखता और जो अपने सुखमय शुद्ध सिद्ध स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता है। ऐसा ज्ञान और ध्यान में मग्न रहने वाला चैतन्य ही 'ज्ञान दृष्टि' से सच्चा ब्रह्मचारी है।

सारा संसार राग रंग में मस्त हो रहा है, कुछ कहने सुनने की बात नहीं रही, यहाँ कौन किसकी सुनता है।

कोउ तो करे किलोल भामिनी सों रीझि रीझि,
वाही सों सनेह करै काम रंग अंग में।
कोउ तो लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि,
लक्ष लक्ष मान करैं लच्छि की तरंग में।
कोउ महा शूर वीर कोटिक गुमान करै,
मो समान दूसरो न देखो कोऊ जंग में।
कहैं कहा 'भैया' कछु कहिवे की वात नाहिं,
सब जग देखियतु राग रस रंग में।

कोई तो कामिनी के प्रेम में मस्त होकर काम के रंग में डूबा हुआ उसी के साथ किलोलें कर रहा है।

कोई लाखों रुपये जोड़कर उसीका आनन्द ले रहे हैं और लक्ष्मी की तरङ्गों में डूवे हुए लाखों तरह का घमंड कर रहे हैं।

कोई बड़े शूरवीर करोड़ों तरह का गुमान करते हुए कह रहे हैं कि जंग के मैदान में मेरी बराबर बहादुर कोई दूसरा नहीं है।

ऐसी हालत में हे भाई! किसी से क्या कहना कोई कहने की बात ही नहीं है सारा संसार रस रङ्ग के राग में फँसा हुआ है।

पंचेन्द्रिय सम्वाद

यह पाचों इन्द्रियों का बड़ा सुन्दर सम्वाद है। साधु महाराज उद्यान में बैठे हुए धर्म उपदेश दे रहे थे। एक समय उपदेश में उन्होंने कहा—ये पांचों इन्द्रियां बड़ी दुष्ट हैं इनका जितना ही पोषण किया जावे ये उतना ही दुःख देती हैं। तब एक विद्याधर इन्द्रियों का पक्ष लेते हुए बोला—महाराज इन्द्रिएँ दुष्ट कैसी हैं।

इनकी बात सुनिये ये जीव को कितना सुख देती हैं। तब इन्द्रियं अपने-अपने गुणों का वर्णन करती हैं, वर्णन बड़ा सुन्दर है।

भाषा बहुत सरल तथा अर्थ सुबोध है यह काव्य १५२ दोहों में समाप्त हुआ है ?

इक दिन इक उद्यान में, बैठे श्री मुनिराज।
धर्म देशना देत हैं, भव जीवन के काज॥
चली बात व्याख्यान में, पांचों इन्द्रिय दुष्ट।
त्यों त्यों ये दुःख देत हैं, ज्यों ज्यों कीजे पुष्ट॥
विद्याधर बोले तहाँ, कर इन्द्रिन को पक्ष।
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रत्यक्ष॥

सब ने पहिले नाक अपना गुण वर्णन करती है इसका मनोरंजन व्याख्यान सुनिए ?

नाक कहै प्रभु मैं बड़ो, और न बड़ो कहाय।
नाक रहै पत लोक में, नाक गए पत जाय॥
प्रथम वदन पर देखिए, नाक नवल आकार।
सुंदर महा सुहावनी, मोहित लोक अपार॥
सुख विलसै संसार का, सो सब मुझ परसाद।
नाना वृक्ष सुगंधि को, नाक करै आस्वाद॥

नाक की इस बड़ाई को सुनकर कान क्या कहता है इसे भी ध्यान देकर सुनिए ?

कान कहै रे नाक सुन, तू कहा करै गुमान।
जो चाकर आगे चले, तो नहिं भूप समान॥
नाक सुरनि पानी झरै, बहै श्लेषम अपार।
गूंधनि करि पूरित रहै, लाजै नहीं गँवार॥

तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज।
मूदै तुह दुंगंध में, तऊ न आवै लाज॥
वृषभ ऊँ नारी निरख, और जीव जग माहिं।
जित तित तो को छेदिये, तोऊ लजानो नाहिं॥

× × ×

कानन कुंडल झलकता, मणि मुक्ता फल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार॥
सातों सुर को गाइवो, अद्भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिए, मीठे मीठे नाद॥
कानन सरभर को करै, कान वड़े सिरदार।
छहों द्रव्य के गुण सुनै, जानै सवद विचार॥

कान जब अपनी प्रशंसा के पुल बाँध चुका तब आँख घबड़ा उठी वह बड़ी तेजी के साथ सँभल कर क्या कहती है इस पर ध्यान दीजिए।

आँख कहै रे कान तू, इस्यो करै अहँकार।
मैलनि कर मूंद्यो रहै, लाजै नहीं लगार॥
भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह।
तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह॥
पहिले तुम को वेधिए, नर नारी के कान।
तोहू नहीं लजात है, बहुरि धरै अभिमान॥
कानन की बातैं सुनी, साँची झूठी होय।
आँखन देखी बात जो, तामैं फेर न कोय॥
इन आँखन तैं देखिए, तीर्थंकर को रूप।
आँखन तै लखिए सवै, नाना रङ्ग अनूप॥

आँख अपनी क़रामात कह चुकी अब जीभ की बारी आई वह भड़ककर क्या बोलती है इसका भी थोड़ा अनुभव कीजिए।

जीभ कहै रे आँखि तू, काहे गर्व कराय।
काजल कर जो रङ्गिए, तोहू नाहिं लजाय॥
कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगार।
घात बात में रोय दे, बोलै गर्व अपार॥
जहाँ तहाँ लागत फिरै, देख सलोनो रूप।
तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप॥

× × ×

जीभ कहै मोतैं सबै, जीवत है संसार।
षट रस भुंजो स्वाद लै, पालों सब परिवार॥
मो बिन आँख न खुल सकै, कान सुनै नहिं बैन।
नाक न सूँघै बास को, मो बिन कहीं न चैन॥
दुरजन से सज्जन करै, बोलत मीठे बोल।
ऐसी कला न और पै, कौन आँख किह तोल॥

जीभ जब अपना भाषण समाप्त कर चुकी तब शरीर सँभल कर क्या कहता है यह भी ध्यान देने योग्य है।

फर्स कहै री जीभ तू, एतो गर्व करंत।
तुझ से ही झूठो कहैं, तो हू नहीं लजंत॥
कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश।
तेरे ही परसाद तैं, भिड़-भिड़ मरै नरेश॥
झूठे ग्रन्थनि तू पढ़ै, दे झूठो उपदेश।
तेरे ही रस काज जग, संकट सहै हमेश॥

× × ×

नाक, कान, नैना, सुनो, जीभ रहा गर्वाय।
सब कोऊ शिर नायके, लागत मेरे पाय॥
झूठी झूठी सब कहै, साँची कहै न कोय।
बिन काया से तप तपै, मुक्ति कहाँ सों होय॥

मन महराज अब तक छिपे वैठे थे। जब पाँचों इन्द्रिएँ अपनी अपनी सफाई पेश कर चुकीं तब आप अपने को सँभाल न सके। आप बड़ी गंभीरता के साथ बोले।

मन बोल्यो तिहँ ठौर, अरे फरस संसार में।
तू मूरख सिर मौर, कहा गर्व झूठो करै॥
इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे।
कहा करै अभिमान, तो सम मूरख कौन है॥

× × ×

मन राजा मन चक्रपति, मन सब को सरदार।
मन सो बड़ो न दूसरो, देखो इह संसार॥
मन इन्द्रिन को भूप है, इन्द्रिय मन के दास।
ज्ञान,ध्यान,सुविचार सब, मन तैं होत प्रकाश॥

पाँचों इन्द्रिएँ और मन जब अपनी अपनी महिमा वर्णन कर चुके तब मुनि महराज क्या फैसला देते हैं इसको पढ़कर समझिए।

तब बोले मुनिराय यों, मन क्यों गर्व करंत।
तेरी कृपा कटाक्ष से, मनुज नर्क उपजंत॥
इन्द्रिय तौ वैठी रहैं, तू दौरे निशदीश।
छिन छिन बाँधै कर्म को, देखत है जगदीश॥

× × ×

भौंरो परयो रस नाक के रे, कमल मुदित भये रैन।
केतकी काँटन बाँधियो रे, कहूँ न पायो चैन॥
कानन की संगति किये रे, मृग मारयो वन माँहि।
अहि पकरयो रस कान केरे, कितहुँ छूट्यो नाँहि॥

आँखनि रूप निहारि केरे, दीप परत है धाय।
देखहु प्रगट पतंग को रे, खोवत अपनो काय॥
रसनारस मछ मारियो रे, दुर्जन कर विश्वास।
यातैं जगत विगूचियो रे, सहै नरक दुखवास॥
फरसहि तें गज वसपरयोरे, बँध्यो साँकल तान।
भूख प्यास सब दुख सहै रे, किहविध कहहिं वखान॥
मन राजा कहिए बड़ो रे, इन्द्रिन को सरदार।
आठ पहर प्रेरित रहे रे, उपजै कई विकार॥
इन्द्रिन तैं मन मारिये रे, जोरिये आतम माँहि।
तोरिये नाँतो राग सों रे, फोरिये दल शिव जाँहि॥
निकट ज्ञान दृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय।
चिकट कटै जब राग की, प्रगट चिदानन्द होय॥

कुपंथ सुपंथ पचीसिका

कुपंथ क्या है और सुपंथ क्या है इसे २५ छन्दों द्वारा बतलाया है।

देव और ग्रन्थ की परीक्षा किए बिना आत्म ज्ञान से रहित अज्ञानी सत्य को नहीं पा सकते।

देह के पवित्र किए आतमा पवित्र होय,
ऐसे मूढ़ भूल रहे मिथ्या के भरम में।
कुल के आचार को विचारे सोई जानै धर्म,
कंदमूल खाये पुण्य पाप के करम में॥
मूड़ के मुड़ाये गति देह के दहाये गति,
रातन के खाये गति मानत धरम में।
शस्त्र के धरैया देव शास्त्र को न जाने भेव,
ऐसे हैं अबेव अरु मानत परम में॥

मूर्ख प्राणी ! देह को जल से पवित्र कर के आत्मा का पवित्र होना मानते हैं वह मिथ्या भ्रम में ही भूले हुए हैं।

कुल के आचार विचार को ही धर्म जानते हैं और पाप कर्म के उदय से कन्द मूल खाकर ही पुण्य समझते हैं। वह सिर के घुटाने से, देह के जलाने से और रात्रि को खाने से ही जीव की मुक्ति होना मानते हैं। असत्य के हथियार को रखने वाले वे मूर्ख ! देव और शास्त्र के रहस्य को नहीं जानते हैं ऐसे अविवेकी होकर भी अपने को आत्म ज्ञानी मानते हैं वे सत्य का रहस्य कैसे जान सकते हैं।

ज्ञानी आत्म मुक्ति कैसे प्राप्त करता है इसका शब्दालंकार पूर्ण वर्णन सुनिए।

कटाक कर्म तोरि के छुटाक गांठ छोर के,
पटाक पाप मोर के तटाक दै मृषा गई।
चटाक चिन्ह जानिके, झटाक हीय आन के,
नटाकि नृत्य भान के खटाकि नै खरी ठई॥
घटा के घोर फारिके तटाक वंध टार के,
अटा के राम धारकें रटाक राम की जई।
गटाक शुद्ध पान को हटाकि आन आन को,
घटाकि आप थान को सटाक श्यो वधू लई॥

कर्मों के जाल को कटाक से तोड़कर झट पट मोह की गांठ खोलकर पाप के भार को पटककर असत्य को फौरन ही हटा दिया।

चटपट ही आत्मा को जानकर झटपट ही हृदय में धारण कर संसार नाटक के नृत्य को भंगकर तुरंत ही शुद्धात्मनय की पताका खड़ी कर दी।

अज्ञान की घोर घटा को फाड़कर, तड़ाक से ही बंधन को काटकर हृदय में शुद्ध चैतन्य को धारण कर उसी की रट लगाने लगा।

शुद्ध आत्म अमृत का पानकर, पर पदार्थों को हटाकर अपने स्थान में मग्न होकर सटाक से शिव रमणी को प्राप्त कर लिया।

संसार में अनेक प्रकार के भेष धारण कर बहुत से लोग भटकते फिरते हैं वे सच्चे साधु नहीं हैं इसका अलंकारिक वर्णन देखिए।

कोऊ फिरैं कनफटा, कोऊ शीप धरैं जटा,
कोऊ लिए भस्म वटा भूले भटकत हैं।
कोऊ तज जाहिं अटा, कोऊ घेरैं चेरी चटा,
कोऊ पढ़ै पटा कोऊ धूम गटकत हैं॥
कोऊ तन लिए लटा, कोऊ महा दीसैं कटा,
कोऊ तर तटा कोऊ रसा लटकत हैं।
भ्रम भाव तें न हटा, हिये काम नहीं घटा,
विषै सुख रटा साथ हाथ पटकत हैं॥

कोई कानों को फाड़कर फिरते हैं कोई शिरपर जटा रखाते हैं और कोई भस्म रमाए हुए आत्म ज्ञान से भूले हुए भटकते हैं।

कोई मकान छोड़कर जंगलों में जाते हैं, कोई चेला चेली मूड़ते हैं कोई औंधे पड़े रहते हैं और कोई धुँए को गटकते हैं।

कोई शरीर को सुखाते हैं, कोई मस्त पड़े हैं कोई वृक्ष के नीचे आसन जमाए हुए हैं और कोई जटाओं से लटक रहे हैं।

हृदय से मिथ्या भ्रम का भाव नहीं हटा है और न कामदेव की इच्छा ही कम हुई है विषय सुख के साथ रहकर उसी की रटन लगाए हुए वे सब व्यर्थ ही हाथ पटकते हैं।

ब्रह्माजी की सृष्टि को चोर चुरा ले गए हैं वे उसकी चारों ओर खोज कर रहे हैं।

करता सवन के करम को कुलाल जिम,
जाके उपजाये जीव जगत में जे भये।
सुर तिरजंच नर नारकी सकल जन्तु,
रच्यो ब्रम्हण्ड सव रूप के नये नये॥
तासों वैर करवे को प्रगटो कहाँ सों आय,
ऐसे महावली जिह खातर में न लये।
ढूढ़ै चहुँ ओर नाहिं पावे कहूं ताको ठौर,
ब्रह्मा जू की सृष्टि को चुराय चोर ले गये॥

कुम्हार की तरह सभी प्राणियों के कर्म की रचना करने वाला और जिसके पैदा किए ही संसार में जीव हुए हैं।

देव, तिर्यंच मनुष्य, नारकी आदि सभी जीवों को अनेक तरह के नए नए रूप देकर जिसने ब्रह्मांड को बनाया है।

उससे द्वेष रखने वाला, और अपने आगे किसी को भी न समझने वाला महाबली कहाँ से पैदा हो गया।

चारों ओर ढूढ़ते हैं परन्तु कहीं भी पता नहीं लगता ब्रह्मा जी की सृष्टि को चोर चुरा ले गए?

सुबुद्धि को किस प्रकार सुन्दर शिक्षा दी जा रही है।

अचेतन की देहरी, न कीजे यासों नेहरी,
ये औगुन की गेहरी परम दुख भरी है।
याही के सनेह री न आवै कर्म छेहरी,
सुपावैं दुःख तेहरी जे याकी प्रीति करी है।

अनादि लगी जेहरी जु देखत ही खेहरी,
तू यामें कहा लेहरी कुरोगन की दरी है।
काम गज केहरी, सु राग द्वेष के हरी,
तू तामें दृग देहरी जो मिथ्या मति दरी है।

यह शरीर जड़ है, अवगुणों का भंडार है महान दुःखों से भरा हुआ है तू इससे स्नेह मत कर।

इससे स्नेह करने से कर्म का कभी अंत नहीं आता वे बड़ा दुःख पाते हैं जो इससे प्रीति रखते हैं।

यह रोगों का घर तेरे साथ अनादि से लगा हुआ है यह देखने के लिए खाक का पुतला है इससे क्या लाभ लेगी।

हे सुबुद्धि जो कामदेव हाथी के लिए सिंह के समान हैं, जिन्होंने राग देश को नष्ट कर दिया है और जो मिथ्या बुद्धि का दलन करने वाले हैं उन्हीं में तू अपनी दृष्टि लगा।

राजा के परजा सब बेटा बेटी के समान,
यह तो प्रत्यक्ष बात लोक में कहान है।
आप जगदीस अवतार धरयो धरनी पै,
कुंजनि में केल करी जाको नाम कान्ह है॥
परमेश्वर करै पर वधू सों अनाचार,
कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है।
अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो,
जगत के डोबिवे को झूठो सरधान है॥

यह कहावत संसार में अत्यंत प्रसिद्ध है कि राजा को सारी प्रजा पुत्र और पुत्री के समान होती है।

परमेश्वर होकर पर नारियों के साथ अनाचार करते हैं यह कहते लज्जा नहीं आती ऐसी ही बातों से पुरान भरा है।

ईश्वर निर्णय पच्चीसी

इनमें २५ छन्दों द्वारा वतलाया है कि ईश्वर कौन है और वह कैसा है अन्त में मतों के पक्षपात का दिग्दर्शन बड़े सुन्दर शब्दों में कराया है।

एक मत वाले कहें अन्य मत वारे सब,
मेरे मतवारे पर वारे मत सारे हैं।
एक पंच तत्व वारे एक एक तत्व वारे,
एक भ्रम मत वारे एक एक न्यारे हैं।
जैसे मतवारे वकैं तैसे मत वारे वकैं,
तासों मतवारे तकैं विना मत वारे हैं।
शान्ति रस वारे कहैं मत को निवारे रहैं,
तेई प्रान प्यारे रहैं और सब वारे हैं।

एक मत वाले कहते हैं और सब मतवाले हैं मेरे मत वालों पर सब मत न्योछावर हैं पंच तत्व, एक तत्व, भ्रम मत ये सब न्यारे २ मत हैं और जैसे मतवाले (मदोन्मत्त,) वकते हैं उसी तरह ये सब मत वाले भी वकते हैं। शांति रस के चखने वाले मत के पक्ष को रोकते हैं वही ज्ञानी हैं और संसार के प्यारे हैं वाकी तो सब (वारे) आज्ञानी हैं।

जो यज्ञ में हिंसा आदि के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं उसके विषय में कविवर क्या कहते हैं, इसे सुनिए।

हिंसा के करैया जोपै जैहैं सुरलोक मध्य,
नर्क मांहि कहो वुध कौन जीव जावेंगे।
लैकैं हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान,
ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे।

ऐसे दुष्ट पापी जे संतापी पर जीवन के,
ते तो सुख सम्पति सों केसे के अघावेंगे।
अहो ज्ञानवंत संत तंत कै विचार देखो,
वौवै जे वंवूल ते तौ आम कैसे खावेंगे।

भाई ? हिंसा करनेवाले, अगर स्वर्ग जाँयगे तो नर्क में कौन जायगा। तलवार से जो निरपराधी के प्राणों को छेदते हैं, वह पिशाच नहीं तो कौन हैं ? जो दूसरों को कष्ट देते हैं, वे सुख संपति से कैसे तृप्त होंगे।

ज्ञानी भाई ? सोचो जो वंवूल बोता है वह आम कैसे खायेगा।

कितना सरस और व्यंग मय उपदेश है।

परमार्थ पद पंक्ति

इसमें कविवर के २५ आध्यात्मिक पद हैं प्रत्येक पद कल्पना पूर्ण सुन्दर और सरस है। एक परदेशी का पद देखिए।

कहा परदेशी को पतियारो।
मन माने तव चलै पंथ को, साँझ गिनै न सकारो।
सवै कुटुम्ब छांड़ इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो॥
दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो॥
धन सों राचि धरम सों भूलत, भूलत मोह मझारो।
इहिं विधि काल अनंत गमायो, पायो नहिं भव पारो॥
साँचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे भइया आपही आप संभारो॥

इस परदेशी शरीर का क्या विश्वास ? जब मन में आई तब चल दिया न सांझ गिनता है न सबेरा। दूर देश को खुद ही चल देता है कोई रोकने वाला नहीं इससे कोई कितना ही प्रेम करे आखिर यह अलग हो जाता है।

धन में मस्त होकर धर्म को भूलता है और मोह में झूलता है सच्चे सुख को छोड़कर भ्रम की शराब पीकर मतवाला हुआ अनंत काल से घूम रहा है। भाई ? चेतन तू चेत अपने आपको सँभाल। इस परदेशी का क्या विश्वास ?

घट में ही परमात्मा है। सुनिए।

या घट में परमात्मा चिन्मूरति भइया।
ताहि विलोकि सुदृष्टि सो पंडित परखैया॥
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भव सिन्धु तरैया।
तिहूँ लोक में प्रगट है, जाकी ठकुरैया॥
आप तरैं तारैं परहिं, जैसे जल नैया।
केवल शुद्ध स्वभाव है, समझै समझैया॥
देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै वसइया।
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा, चेतो चितवइया॥

भाई परमात्मा को कहां खोजते हो शुद्ध दृष्टि से देखो वह इस घट में ही है। हे पंडित ! उसकी परख करो।

वह ज्ञान अमृत मई संसार से पार होकर नाव की तरह दूसरों को भी पार करने वाला है। तीन लोक में उसकी बादशाहत है। शुद्ध स्वभाव मय है उसको समझदार ही समझ सकते हैं। वही देव, गुरु मोक्ष का वासी और त्रिभुवन का मुकुट है। हे चेतन चेतो, अपने को परखो।

मन बत्तीसी

इसमें मन की चंचलता का ३२ छन्दों में वड़ा सुन्दर वर्णन है। मन के वश किए विना कुछ भी नहीं होता एक छन्द में इसका मनोहर वर्णन देखिए।

कहा मुड़ाए मूड़ बसे कहा मट्ठका।
कहा नहाए गंग नदी के तट्ठका॥
कहा वचन के सुने कथा के पट्ठका।
जो वस नाहीं तोहि पसेरी अट्ठका॥

यदि तेरा ८ पसेरी का मन वश में नहीं है तो हे भाई? मठ में रहने, सिर घुटाने, गंगा में नहाने और कथा पाठ के पढ़ने से क्या होता है? कितने सीधे और सरल शब्द है।

चेतन कर्म चरित्र

चैतन्य राजा मिथ्या नींद में कुमति के साथ सोता था। अचानक सुमति देवी वहाँ आती है वह कहती है हे राजा! तू गफ़लत में क्यों पड़ा हुआ है तेरे पीछे कर्म चोर लगे हुए हैं तू सावधान हो। वह उसे समझाती है कि तू इन चोरों से छुटकारा पाने के लिए अपने स्वरूप का ध्यान कर। यह हाल देखकर कुमति नाराज़ होकर अपने पिता मोह के पास जाकर शिकायत करती है मोह चैतन्य से युद्ध करता है और हारकर भाग जाता है। इसका सुन्दर वर्णन कवि ने २९६ छन्दों में किया है कविता सरल और सुबोध है?

सोवत महत मिथ्यात में, चहुँ गति शय्या पाय।
बीती मिथ्या नींद तहं, सुरुचि रही ठहराय॥

सुबुद्धि कहती है—

तब सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो कंत सुजान।
यह तेरे संग अरि लगे, महा सुभट बलवान॥
कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानै कंत।
कैतो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्री भगवंत॥
सुनि के सीख सुबुद्धि की, चेतन पकरी मौन।

अब कुमति नाराज होकर कहती है—

उठी कुबुद्धि रिसायकै, यह कुल छयनी कौन॥
मैं बेटी हूं मोह की, ब्याही चेतन राय।
कहो नारि यह कौन है, राखी कहाँ छिपाय॥

वह अपने पिता मोह के पास जाती है और चैतन्य की शिकायत करती है मोह नाराज होकर अपने काम कुमार दूत को भेजता है।

तब भेजो इक काम कुमार, जो सब दूतन में का सरदार।
कै तो पांय परहु तुम आय, कै लरिवे को रहहु सजाय॥

चैतन्य उत्तर देता है!

कर आवहु असवारी बेग, मैं भी बांधी तुम पर तेग।

चैतन्य का उत्तर सुनकर मोह राजा चढ़ाई करता है।

सुन के राजा मोह, कीनी कटकी जीव पै।
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गंवार को॥
सज सज सब ही शूर, अपनी अपनी फौज ले।
आए मोह हजूर, प्रभु दिग्दर्शन कीजिए॥
राग द्वेष दो बड़े वजीर, महा सुभट दल थंभन वीर।

दोनों सेनापति आठों कर्मों की फौज सजाकर चल दिए।

दै धोंसा सब चढ़े जहाँ चेतन बसै।
आये पुर के पास न, आगे को धँसै॥

फौज के आने पर ज्ञान चैतन्य से कहता है।

तबहिं ज्ञान निःशंक ह्वै, बोले प्रभु सन वेन।
चाकर एकहि भेजिए, गह लावे सब सैन॥
कहा विचारो मोह, जिस ऊपर तुम चढ़त हो।
भेजहु सेवक सोह, जो जीवत लावे पकड़॥
हे प्यारे चेतन सुनो, तुम से मेरे नाथ।
कहा विचारो कूर वह, गहि डारों इक हाथ॥

चैतन्य उत्तर देता है।

सूरन की नहिं रीति, अरि आए घर में रहै।
कै हारै कै जीति, जैसी ह्वै तैसी वनै॥

तब ज्ञान अपने विवेक, क्षमा आदि गुणों की फौज लेकर चढ़ाई करता है।

ज्ञान गंभीर दल बीर संग ले चढ्यो,
एक तें एक सब सरस सूरा।
कोटि अरु संखिन न पार कोऊ गनै,
ज्ञान के भेद दल सबल पूरा॥
चढ़त सब वीर मन धीर असवार ह्वै,
देख अरि दलन को मान भंजै।
पेख जयवंत जिन चंद सबही कहै,
आज पर दलनि को सही गंजै॥
वज्जहिं रण तूरे, दलवल पूरे, चेतन गुण गावंत।
सूरा तन जग्गो, कोऊ न भग्गो, अरि दल पै धावंत॥

दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होता है और अन्त में चैतन्य की विजय होती है। इसका वर्णन कविवर ने बड़ा सुन्दर किया है।

सूर वलवंत मद मत्त महा मोह के,
निकसि सव सेन आगे जु आये।
मारि घमसान महा जुद्ध वहु क्रुद्ध करि,
एक तै एक सातों सवाये॥
वीर सुविवेक ने धनुप ले ध्यान का,
मारि कें सुभट सातों गिराये।
कुमक जो ज्ञान की सैन सव संग धसी,
मोहि के सुभट मूर्छा सवाये॥
रणसिंगे वज्जहिं कोऊ न भज्जहिं,
करहिं महा दोऊ जुद्ध।
इत जीव हंकारहि, निज पर वारहिं,
करहँ अरिन को रुद्ध॥
उत मोह चलावे सव दल धावे,
चेतन पकरो आज।
इहि विधि दोऊ दल, कल नाहीं पल,
करैं युद्ध रण साज॥
मोह की फौज सों नाल गोले चलैं,
आय चैतन्य के दलहि लागें।
आठ मल दोप सम्यक्त के जे कहे,
तेहि अव्रत में मोह दागें॥
जीव की फौज सों प्रवल गोले चलैं,
मोह के दलनि को आय मारैं।
अन्तर विराग के भाव वहु भावता,
ताहि प्रतिभास मोह धीर नहिं धारैं॥

अष्ट मद गजनि के हलंके हंकारि दे,
मोह के सुभट सब धँसत सूरे।
एक तें एक जोधा महा भिड़त हैं,
अनिहि बलवंत मदमंत पूरे॥
जीव की फौज में सत्य परतीत के,
गजनि के पुञ्ज बहु धसत माते।
मारि के मोह की फौज को पलक में,
करत घमसान मद मत्त आते॥
मार गाढ़ी मचै, सुभट कोऊ ना बचै,
घाव बिन खाये दुहुं दलन मांही।
एक तें एक योधा दुहुँ दलन में,
कहते कछू उपमा बनत नांही॥
मोह सराग भाव के बान,
मारहि खैंच जीव को तान।
जीव वीतरागहिं निज ध्याय,
मारहिं धनुष बाण इहि ठाय॥
मोह रुद्र बरछी गह लेय,
चेतन सन्मुख घात करेय।
हंस दयालु भाव की ढाल,
निजहिं बचाय करै पर काल॥
चेतन लै घमंधर सुविवेक,
मारि हरी वैरिन की टेक।
लेकर चायिक चक्र प्रधान,
वैरनि मारि करहिं घमसान॥
जीत्यो चेतन भयो अनंद,
बाजहिं शुभ बाजे सुख कंद।

हरिके चेतन मोह को, सूधे शिव पुर जाय।
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय॥

परमात्म शतक

इसमें एक सौ छन्दों द्वारा आत्मा को संवोधित करते हुए परमात्मा के स्वरूप का बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है।

प्रत्येक छन्द अलंकार मय सरस और मनोहर है।

पीरे होहु सुजान, पीरे कारे ह्वै रहे।
पीरे तुम विन ज्ञान, पीरे सुधा सुवुद्धि कहँ॥

(पीरे) ऐ पिय सुजान वनो (पीरे) पीले (कारे) क्यों हो रहे हो। विना ज्ञान के तुम (पीरे) पीड़े जा रहे हो अव सुवुद्धि रूपी अमृत को (पीरे) पियो।

मैं न काम जीत्यो वली, मैं नकाम रसलीन।
मैं न काम अपनो कियो, मैंन काम आधीन॥

मैं वलवान काम को न जीत सका मैं 'नकाम' व्यर्थ विपयाशक्त ही रहा। मैंने अपना काम नहीं किया, और (मैंन काम) कामदेव के आधीन ही वना रहा।

तारी पी तुम भूलकर, ता रीतन रस लीन।
तारी खोजहु ज्ञान की, तारी पति पर लीन॥

हे पिय! तुम मोह रूपी ताड़ी-का नशा पीकर उसी की रीति में लवलीन हो रहे हो। हे प्रवीण! ज्ञान की 'ताली' खोजो जिसमें तुम्हारी (पति) लाज रहे।

जैनी जाने जैन नै, जिन जिन जानी जैन।
जे जे जैनी जैन जन, जानै निज निज नैन॥

जैनी जैन शास्त्रोक्त नयों को जानता है और (जिन) जिन्हों-ने उन नयों को (जिन) नहीं जाना उनकी (जैन) जय नहीं होती। इसलिए (जे जे) जो जो (जैन जन) जिन धर्म के दास जैनी हैं वे अपनी अपनी (निज निज) (नैन) नयों को अवश्य ही जानैं।

वेद भाव सब त्याग कर, वेद ब्रह्म को रूप।
वेद माँहि सब खोज है, जो वेदे चिद्रूप॥

स्त्री, पुरुष, नपुसंक वेद के भाव त्याग कर, आत्मा का स्वरूप (वेद) (जान) शास्त्रों में सब का पता है यदि तू आत्मा को जानना है तो सब कुछ जानता है नहीं तो कुछ नहीं?

तीन प्रश्नों का एक उत्तर।

वीतराग कीन्हों कहा? को चन्दा की सैन?
धाम द्वार को रहत है, 'तारे' सुन सिख वैन॥

वीतराग ने क्या किया 'तारे' चन्द्रमा की सैना कौन है (तारे) दरवाजे पर कौन रहता है 'ताले'।

तीन प्रश्नों का एक ही उत्तर सुनिए।

जिन पूजैं ते हैं किसे, किह तै जग में मान।
पंच महा व्रत जे धरैं, 'धन' बोलै गुरु ज्ञान॥

जिन्होंने जिन की पूजा की वे धन्य हैं, धन से जग में मान होता है जो पंच महा व्रत धारण करते हैं उनको गुरू जन धन्य कहते हैं।

चार माहिं जोलो फिरै, धरै चार सों प्रीति।
तोलौं चार लखै नहीं, चार खूट यह रीति॥

जब तक चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) से प्रीति हैं तब तक चारों गति में फिरता है और तभी तक (सुख, ज्ञान,

बल, वीर्य) इन चारों को नहीं देख सकता यह चारों खूंट की रीति है ?

जे लागे दश बीस सों, ते तेरह पंचास।
सोलह बासठ कीजिए, छाँड़ चार को बास॥

जो दश+बीस=तीस, तृष्ना से लगे हुए हैं वह तेरह+पचास=त्रेसठ हैं अर्थात् मूर्ख है इसलिए सोलह+बासठ=अठहत्तर आठ कर्मों को हतकर तरो और चार गति का बास छोड़ दो, इसमें संख्या शब्दों से श्लेष अर्थ गृहण कर कवि ने अपना चातुय दिखलाया है।

बालापन, गोकुल बसे, यौवन मनमथ राज।
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुबजा काज॥

कृष्ण जी बालापन में गोकुल रहे, यौवन में मथुरा और फिर कुबजा के रस में मग्न होकर वृन्दावन रहे। इसी तरह हे जीव! तू बालापन में इन्द्रियों के कुल की केलि में रहा जवानी में कामदेव के वश में रहा फिर वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें निवास किया और अन्त में कुबजा कुमति के कार्य में फंसा रहा ?

जेतन की संगति किए, चेतन होत अजान।
ते तन सों ममता धरै, आपुनो कौन सयान॥

जिस तन की संगति करने से, चेतन अज्ञान बनता है। उस तन से ममता रखने में क्या होशयारी है।

अनित्य पंचविंशतिका

इसमें संसार की अनित्यता का २५ काव्यों में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है प्रत्येक पद्य सरस और मनन करने योग्य है।

शयन करत है रयन को, कोटि ध्वज अरु रंक।
सुपने में दोऊ एक से, वरतैं सदा निशंक॥

रात को करोड़पति और भिखारी दोनों सोते हैं। वह दोनों स्वप्न में एक से हैं और निशंक होकर कियाएं करते हैं।

मोह अपने जाल में फँसाकर जीवों को किस तरह नचाता है इसका वर्णन सुनिए।

नटपुर नाम नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होंहि चहुँ ओर।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित ओर॥
उछरत गिरत फिरत फिरका दै, करत नृत्य नाना विधि घोर।
इहि विधि जगत जीव सब नाचत, राचत नाहिं तहाँ सुकिशोर॥
कर्मन के वश जीव है, जहँ खैंचत तहँ जाय।
ज्योंहि नचावै त्यों नचै, देख्यो त्रिभुवन राय॥

संसार रूपी एक सुन्दर नगर है उसमें चारों ओर नृत्य हो रहा है वहाँ मोह नायक सबको नचाता है। सभी प्राणी नित्य प्रति नये नये स्वांग रखकर आते हैं और उछलते गिरते इधर उधर घूमते हुए अनेक तरह का नृत्य करते हैं।

मोह राजा जिस तरह से ही नचाता है वे सब जीव उसी तरह नचते हैं परन्तु जो आत्मज्ञानी आत्मा है वह उस नृत्य देखने में मग्न नहीं होता।

इस तरह कर्म के वश में पड़ा हुआ जीव जहाँ वह खींचते हैं, वहीं जाता है और तीन लोक का राजा होकर यह चैतन्य उसी तरह नाचता है जिस तरह कर्म इसे नचाते हैं।

भाई! इस संसार के निवासी बनकर क्यों वेफ्रिक बैठे हो तुम्हें कुछ अपने चलने की चिन्ता है।

थानी है के मानी तुम थिरतां विशेष इहां,
चलवे की चिंता कछू है कि तोहि नाहिंने।
घरी की खबर नाहिं सामौ सौ वरष कीजे,
कौन परवीनता विचार देखो काहिने॥
जोरत हो लच्छ बहु पाप कर रैन दिन,
सौं तो परतच्छ पांय चलवो उवाहिंने।
आतम के काज विन रज सम राज सुख,
सुनो महाराज कर कान किन दाहिने॥

इस संसार के मूल निवासी होकर तुमने यहाँ रहने में ही निश्चल स्थिरता मान ली है अरे भाई तुम्हें चलने की भी कुछ चिन्ता है या नहीं।

एक घड़ी की तो खबर नहीं है और सामान सौ वर्ष का कर रहा है कुछ विचार कर तो देखो इसमें क्या चतुरता है रात दिन पाप करके लाखों रुपया जोड़ते हो परन्तु यह बात प्रत्यक्ष दिखती है कि अन्त में नंगे पैर ही जाना पड़ता है।

हे भाई! आत्म उद्धार के विना यह राज्य सुख भी धूल के समान है। हे चैतन्य महाराज! कानों को इधर करके यह बात क्यों नहीं सुनते हो।

यह दुनियाँ सराय हैं इसमें कितने दिन रहना है। यदि तूने आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो सब करनी बेकार है।

जगत चला चल देखिए, कोउ सांझ कोऊ भोर।
लाद लाद कृत कर्म को, न जानों किन्ह ओर॥
नर देह पाये कहा पंडित कहाए कहा,
तीरथ के न्हाये कहा तिर तो न जैहै रे।
लच्छि के कमाये कहा अच्छ के अघाए कहा,
छत्र के धराये कहा छीनता न ऐहै रे॥

केश के मुड़ाए कहा भेष के बनाए कहा,
जोवन के आए कहा जरा हू न खैहै रे।
भ्रमको विलास कहा दुर्जन में वास कहा,
आतम प्रकाश विन पीछे पछितहै रे॥

यह दुनियाँ मुसाफिरखाना है। अपने अपने किए कर्मों को लेकर कोई सवेरे और कोई शाम को न मालूम कहाँ चले जायेंगे।

मानव शरीर के पा लेने पर पंडित कहलाकर तीर्थ स्नान करके क्या तू संसार समुद्र से तर जायगा।

लक्ष्मी के कमा लेने और इन्द्रियों को तृप्त करने तथा छत्र को धारण करने से ही क्या तेरे शरीर को क्षीणता न आयेगी क्या यौवन के आने के बाद बुढ़ावा न आयगा।

शिर के घुटाने और भेष के बनाने से क्या होता है और इस भ्रम के विलास दुर्जन शरीर में रहने से ही क्या हुआ। यदि तू आत्म प्रकाश न पा सका तो हे भाई! अंत में तुझे पछताना ही पड़ेगा।

पुण्य पाप जग मूल पचीसिका

इसमें पुण्य और पाप की महिमा का वर्णन २५ छन्दों में किया है और अंत में दोनों को त्यागकर आत्म हित करने का उपदेश दिया है। एक पद्य का नमूना देखिए।

आगे मद माते गज पीछे फोज रही सज,
देखैं अरि जाय भज वसै वन वन में।
ऐसे वल जाके संग रूप तो वन्यो अनंग,
चमू चतुरंग लोग कहै धन धन में॥

पुण्य जब खसि जाय पर्यो पर्यो विललाय,
पेट हूं न भर्यो जाय पाप उदै तनमें।
ऐसी ऐसी भांति की अवस्था कई धरै जीव,
जगत के वासी लख हँसी आवै मन में॥

मद भरे हाथी आगे २ चल रहे हैं और पीछे बलवान् फौज सजी हुई है जिसे देखते ही शत्रु डर कर जंगलों जंगलों घूम रहे हैं। ऐसी शक्ति जिसके साथ है और जिसका रूप कामदेव के समान सुन्दर है जिसकी चतुरंगी सैना को देखकर लोग धन्य धन्य कहते हैं। उस महा शक्तिशाली पुरुष का पुण्य जिस समय क्षीण हो जाता है तब वह जमीन पर पड़ा हुआ तड़पता रहता है और पेट भी मुश्किल से भरा जाता है।

संसार में पुण्य पाप के उदय से इस तरह की अनेक अवस्थाएं बदलने वाले इन प्राणियों को देख कर आत्म ज्ञानी को मन में बड़ी हँसी आती है।

जिन धर्म पच्चीसिका

इसमें जैन धर्म के महात्म्य का वर्णन २५ छन्दों में वर्णन किया है।

जैन धर्म की सुन्दर शिक्षा सुनिए।

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वै के कहा बैठो,
तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं।
छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी,
डारत अँधेरी भैया किए जात भोर हैं॥
जागवो तो जाग अब कहत पुकारें तोहि,
ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं।
फोर के शकत निज चोर को मरोर बांधि,
तोसे बलवान आगे चोर ह्वैकै को रहैं॥

मेरे मित्र ! तू बेफिक्र होकर क्या बैठा है देख तेरे पीछे बलवान काम चोर लगा है वह तेरी ज्ञान दौलत छीने लेता है अरे अँधेरा डालकर सब कुछ स्वाहा किए जाता है। भाई जाग। गुरु पुकारते हैं ज्ञान की आखें खोल देख तेरे पास चोर हैं ? अरे बलवान आत्मा अपनी ताकत दिखला तेरे जैसे बलवान के आगे चोर होकर कौन रह सकता है ? कैसा उत्तेजक प्रबोधन हैं कैसी क्रांति मई भावना है।

जैन धर्म के कल्याण कारी उपदेश का दिग्दर्शन कीजिए।

आँख देखै रूप जहां दौड़े तूही लागै तहाँ,
सुने जहाँ कान तहाँ तुही सुनै वात है।
जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै,
नाक सूँघै वास तहाँ तूही विरमात है॥
फर्स की जु आठ जाति तहाँ कहो कौन भांति,
जहाँ तहाँ तेरो नांव प्रगट विख्यात है।
याही देह देवल में केवलि स्वरूप देव,
ताकर सेव मन कहाँ दौड़ो जात है॥

आँख जो कुछ भी रूप देखती है कान जो कुछ भी वात सुनते हैं जीभ जो कुछ भी रस को चखती है नाक जो कुछ भी गंध सूंघती हैं और शरीर जो कुछ भी आठतरह का स्पर्श लेता है यह सब तेरी ही करामात है। हे आत्मा ! इस शरीर मंदिर में तू देव रूप में बैठा है। मन ! तू उसी आत्म देव की सेवा क्यों नहीं करता, कहाँ दौड़ा जाता है।

जो मिथ्या देवों की सेवा करते हैं वे कैसे पार हो सकते हैं। इसका निष्पन्न वर्णन सुनिए।

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करै, सेव
ऐसो है अवेव ताको कैसे पाप खपनो।
राग रोग क्रीड़ा संग विषै की उठै तरंग,
ताही में अभंग रैन दिन करै जपनो॥
आरति औ रौद्र ध्यान दोऊ किए आगेवान,
एते पै चहै कल्यान दैके दृष्टि ढपनो।
अरे मिथ्याचारी तै विगारी मति गति दोऊ,
हाथ लै कुल्हारी पाँय मारत है अपनो॥

हे अविवेकी! तू राग द्वेष से भरे हुए देवों की हमेशा सेवा करता है तो तेरा पाप कैसे कट सकता है। राग के रोग में विषय की तरंग उठती है और तू उसकी अभंग जाप जपता है। तूने आर्त और रौद्र ध्यान को अपना नेता बनाया है और आँख वंद कर अपना कल्याण चाहता है।

अरे मिथ्याचारी! तूने अपनी मति और गति दोनों विगाड़ डाली तू हाथ में कुल्हाड़ी लेकर अपने पैर में मारता है।

जिन धर्म की महत्ता का वर्णन सुनिए। पक्षपात से नहीं निष्पक्षता सहित।

धन्य धन्य जिन धर्म, जासु में दया उभयविधि।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासु महिं लखै आप निधि॥
धन्य धन्य जिन धर्म, पंथ शिव को दरसावै।
धन्य धन्य जिन धर्म, जहां केवल पदपावै॥
पुनि धन्य धन्य जिन धर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाइए।
भैया त्रिकाल निज घट विषै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइए॥

जैनधर्म धन्य है। जिसमें दो तरह (आत्म रक्षा और और प्राणी रक्षा) की दया वतलाई है।

जैनधर्म धन्य है, जिसमें प्रत्येक प्राणी अपनी आत्म संपत्ति को देख लेता है।

जैनधर्म धन्य है, जो मुक्ति का मार्ग दिखलाता है।

जैनधर्म धन्य है, जिसके द्वारा जीव कैवल्य पद प्राप्त करता है। जैनधर्म धन्य है, जिससे अनंत सुख प्राप्त किया जाता है। भैया भगवतीदास कहते हैं हे भाई! ऐसे जैनधर्म को शुद्ध दृष्टि से अपने हृदय में तीनों काल धारण कर और उसी का ध्यान कर।

बाईस परिषह—

जैन मुनि बाईस प्रकार की परिषहें सहन करते हैं उसका वर्णन कविवर ने २५ छन्दों में बड़ा सुन्दर किया है।

क्षुधा परिषह—

भूख की ज्वाला कितनी कराल होती है उसको साधु महाराज कैसे अपने वश में करते हैं इसका जीवित वर्णन सुनिए।

जगत के जीव जिह जेर जीत राखे अरु,
जाके जोर आगे सब जोरावर हारे हैं।
मारत मरोरे नहिं छोरे राजा रंक कहूं,
आँखिन अँधेरी ज्वर सब दे पछारे हैं॥
दावा की सी ज्वाला जो जराय डारै छाती छवि,
देवनि को लागै पशु पंछी को विचारे हैं।
ऐसी सुधा जोर भैया कहत कहाँ लौं ओर,
ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे हैं॥

जिसने संसार के सभी प्राणियों को जीतकर अपने वश में कर लिया है जिसके प्रताप के साम्हने बड़े २ बहादुर हार गए हैं।

जिस समय यह अपने चक्कर में जीवों को घुमाती है उस समय राजा हो या भिखारी किसी को नहीं छोड़ती। उस समय आँखों के साम्हने अँधेरा-सा छा जाता है और ज्वर-सा चढ़ जाता है।

आग की ज्वाला के समान कलेजे को जला डालती है। जो देवताओं को भी नहीं छोड़ती। बेचारे पशु पक्षी तो क्या चीज हैं इस विकराल क्षुधा के जोर की कहानी कहते हुए उसका अन्त नहीं आता उस क्षुधा के जोर को जीतकर जैन साधु आत्म ध्यान में निश्चल मग्न रहते हैं।

शीत परिषह—

माह के महीने में नदी के किनारे खड़े हुए जैन साधु शीत की तकलीफ को किस तरह सहन करते हैं।

शीत की सहाय पाय पानी जहाँ जम जाय,
परत तुषार आय हरे वृक्ष झाड़े हैं।
महा कारी निशा मांहि घोर घन गरजाहिं,
चपला हू चमकाहि तहाँ दृग गाढ़े हैं॥
पौन की झकोर चलै पाथर हैं तेहू हिलै,
ओरन के ढेर लगे तामें ध्यान वाढ़े हैं।
कहां लौ वखान करों हेमाचल की समान,
तहाँ मुनिराय पाँय जोर दृढ़ ठाढ़े हैं॥

भयंकर शीत के कारण जहाँ पानी वर्फ की तरह जम जाता है, पाला पड़ने से हरे वृक्ष पतझड़ हो गए हैं।

भयानक काली रात्रि है, मेघ बड़े जोर से गरज रहे हैं, चारों ओर बिजली कड़क रही है।

तेज ठंडी हवा के झोंको से पत्थर भी हिल उठते हैं, ओलों के ढेर के ढेर लगे हुए हैं। ऐसी भयानक दशा में जैन मुनि हिमालय पर्वत के समान पैरों को स्थिरकर ध्यान में मग्न खड़े हुए हैं और शीत की परिषह को सहन करते हैं।

उष्ण परिषह—

ज्येष्ठ के महीने में कैसी विकराल गर्मी पड़ती है उसका कष्ट जैन साधु किस तरह सहन करते हैं।

ग्रीषम की ऋतु मांहि जल थल सूख जांहि,
परत प्रचंड धूप आगि सी वरत है।
दावा की सी ज्वाल माल वहत वयार अति,
लागत लपट कोऊ धीर न धरत है॥
धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी,
वडवा अनल सम शैल जो जरत है।
ताके शृङ्ग शिला पर जोर जुग पांव धार,
करत तपस्या मुनि करम हरत हैं॥

गरमी के मौसम में सभी जलाशय सूख जाते हैं इस तरह प्रचंड धूप पड़ती है मानो आग ही जलती है।

प्रलय की ज्वाला की लपटों की तरह गर्म हवा चलती है जिसकी लपट लगते ही किसी का धैर्य स्थिर नहीं रह सकता।

धरती तवे की तरह तप जाती है। पहाड़ वड़वानल की तरह जलता है। ऐसे कठिन समय में पहाड़ की चोटी की शिला पर

दोनों पैरों को स्थिर रखकर जैन मुनि तपस्या करते हैं और कर्मों के जाल को नष्ट करते हैं।

फुटकर कविता

इसमें ३३ छन्दों में अनेक विषयों पर बड़ी सुन्दर कविता की है।

एक सियार मनुष्य के मृतक शरीर के पास खड़ा है एक श्वान आकर उसको क्या उपदेश दे रहा सो सुनिए।

शीश गर्व नहिं नम्यो, कान नहिं सुनै वैन सत।
नैन न निरखे साधु, वैन तैं कहे न शिवपति॥
करते दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी।
पेट भरयो कर पाप, पीठ पर तिय नहिं दीनी॥
चरन चले नहिं तीर्थ कहँ, तिह शरीर कहा कीजिए।
इमि कहैं श्याल रे श्वान यह, निंद निकृष्ट न लीजिए॥

श्वान कहता है:—जिसका सिर घमंड से झुका नहीं, कानों से सत्य वचन नहीं सुना, आखों से साधुओं के दर्शन नहीं किए, मुँह से भगवान का नाम नहीं लिया, हाथ से दान नहीं दिया, हृदय से कुछ दया न की, पाप करके पेट भरा, पर स्त्री को पीठ नहीं दी, और जिसके पैर तीर्थ यात्रा के लिए नहीं चले उस शरीर का क्या करेगा, ऐसे अधम और निंदित शरीर को हे सियार! तू मत गृहण कर।

यह केवल शब्दों का आडम्बर नहीं है इसके अन्दर बड़ा रहस्य भरा है, सुनिये।

अरिन के ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन,
करम सुभट्टन के पट्टन उजारे हैं।

नर्क तिर्यंच चट पट्ट देकैं वैठ रहे,
विपै चोर झट झट्ट पकर पछारे हैं॥
भौ वन कटाय डारे अट्ठ मद दुट्ठ मारे,
मदन के देश जारे क्रोध हुँ संहारे हैं।
चढ़त सम्यक्त सूर वढ़त प्रताप पूर,
सुख के समूह भूर सिद्ध से निहारे हैं॥

जिसने वैरियों के झुंड को जलाकर खाक कर दिया, कर्म सुभटों के नगर को उजाड़ डाला, नर्क और तिर्यंच गति के किवाड़ बंद कर दिए, विपय चोरों को जल्दी २ पकड़कर पछाड़ दिया है, संसार जंगल को काटकर दुष्ट आठ कर्मों को मार डाला, कामदेव का देश जला दिया, और क्रोध को पछाड़ दिया, ऐसे सम्यक्त (सत्य श्रद्धा, ज्ञान, चरित्र) शूरवीर के चढ़ते ही आत्मा के प्रताप का पूर और सुख का समूह वढ़ गया उसने अपने सिद्ध स्वरूप का दर्शन कर लिया।

वहिर्लापिका

छप्पय छन्द

इसमें ९ प्रश्नों का एक ही उत्तर बड़े मनोहर ढंग से दिया है।

कहा सरस्रुति के कंध, कहो छिन भंगुर को है।
कानन को कहा नाम, बहुत सों कहियत जो है॥
भूपति के संग कहा, साधु राजै किह थानक।
लच्छिय विरथी कहां, कहा रेसम सम वानक॥
श्रेयांस राय कीन्हो कहा, सो कीजे भवि सुख प्रदा।
सब अर्थ अंत यह तंत 'सुन, वीतराग सेवहु सदा॥'

इन सब प्रश्नों का उत्तर 'सुन वीतराग सेवहु सदा' से निकलता है। इसके तीसरे और दूसरे अक्षर से वीन, चौथे और दूसरे से तन, पांचवें दूसरे से रान, छटवें दूसरे से गन, सातवें दूसरे से सैन, आठवें दूसरे से वन, नवमें दूसरे से होन, दसवें दूसरे से सन और ग्यारवें दूसरे से दान बनकर सब प्रश्नों के उत्तर निकलते हैं।

अन्तर्लापिका (छप्पय)

कहो धर्म कब करै, सदाचित में क्या धरिये।
प्रभु प्रति कीजे कहा, दान को कहा उचरिये॥
अश्रव सो किम जीत, पंच पद को किम गहिए।
गुरु शिक्षा किम रहे, इन्द्र जिनको कहा कहिए॥
सब प्रश्नवेद उत्तर कहत, निज स्वरूप मन में धरो।
भैया सुविचक्षन भविक जन, 'सदा दया पूजा करो॥'

सदा, दया, पूजा, करो, इस पद के चार शब्दों में पहिले चार प्रश्नों का उत्तर मिलता है। सदा, दया, पूजा, करो, अन्त के चार प्रश्नों का उत्तर इन्हीं चार शब्दों को उलटे पढ़ने से निकलता है। (रोक, जापु, याद, दास,)

अन्तर्लापिका (छप्पय)

मंदिर बनवाओ, मूर्ति, लाव, सैना सिंगारहु,
अवुआन ? वासर प्रमाण ? पहुँची नगधारहु।
मिश्री मंगवा ? कुमुद लाव, सरसी तन पिक्खहु,
तौल लेहु, दत लच्छि देहु, मुनि मुद्रा पिक्खहु।
सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी,
आकृत्रिम प्रतिमा निरखत, सु, 'करी न घरी न भरी न धरी।'

प्रथम द्वितीय तृतीय प्रश्न के उत्तर 'करी न' शब्द के तीन अर्थ से निकलते हैं (१ कड़ी नहीं है, २ बनवाई नहीं है, ३ हाथी नहीं है) दूसरे पाद के चौथे पाँचवे छठवें प्रश्न के उत्तर 'घरी न' शब्द के तीन अर्थ निकलते हैं (१ घड़ा नहीं, २ घड़ी नहीं, ३ बनी नहीं) तृतीय पाद के तीन प्रश्नों का उत्तर 'भरी न' के तीन अर्थ से निकलते हैं (१ भरी नहीं गई, २ भरी नहीं, ३ जल से नहीं भरी) चतुर्थ पाद के प्रश्नों का उत्तर 'धरी न' के तीन अर्थ से निकलता है। (१ पंसेरी नहीं, २ रक्खी नहीं, ३ धारण नहीं की)?

दोहा

आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप टाप ॥ १ ॥
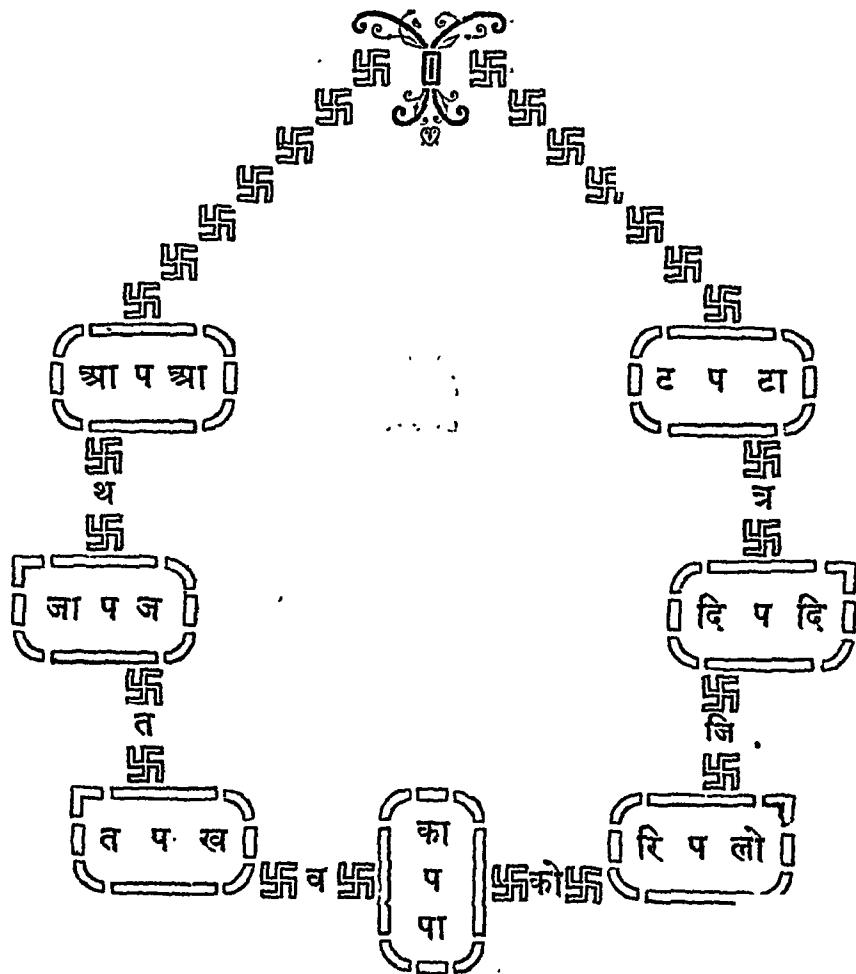
हारबद्धचित्रम्

चित्रवद्ध कविता

कविवर ने बहुतसी चित्रवद्ध कविता की है जिसके चित्र यहाँ दिए जाते हैं।

दोहा

परम धरम अवधारि तू, पर संगति कर दूर ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषवद्धचित्रम्
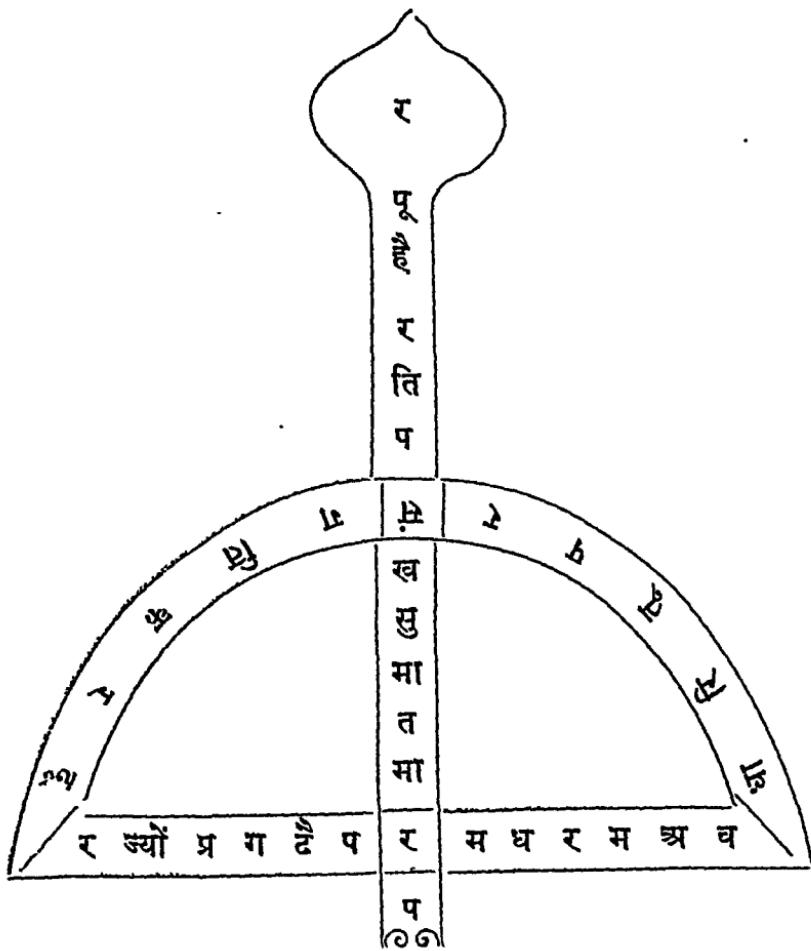
भारतवर्षीय-जैन-साहित्य-सम्मेलन

दमोह, सी० पी०

'ज्ञान समान न आन जगत में सुख का कारण'
[कविवर दौलतराम]

संसार में ज्ञान के समान सुख देनेवाला कोई पदार्थ नहीं है। वह ज्ञान जिनवाणी अथवा जैन-साहित्य के द्वाराही मिलता है। श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी ही जैन-साहित्य है और वह तीर्थंकर के समान ही महान पूज्य है।

वर्तमान में जिनवाणी के उद्धार की अत्यन्त आवश्यकता देखकर उसका उद्धार करने और जैनवाणी का सारे संसार में प्रचार करने के उद्देश्य से ही भारतवर्षीय-जैन-साहित्य-सम्मेलन स्थापित किया गया है।

सर्व प्रकार के पक्षपात से रहित होकर जिनवाणी का प्रचार करना और जैन धर्म को संसार के कोने कोने में पहुँचा देना ही इसका लक्ष्य है।

इसके निम्न लिखित मुख्य कार्य हैं।

१. प्राचीन जैन भंडारों की सूची तैयार करना।
२. प्राचीन अप्राप्त जैन ग्रंथों की खोज करना।
३. प्राकृत तथा संस्कृत के उपयोगी ग्रंथों का संशोधन तथा सरल भाषा में अनुवाद करना।
४. प्राचीन जैन आचार्यों तथा लेखकों का इतिहास तैयार करना और उनके लिखे उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करना।

५ जैन तथा अजैनों को जैन धर्म का सरलता से बोध कराने वाली पुस्तकों की रचना करना।

६. जैन पाठशालाओं के लिए सरल, सुबोध, साहित्यिक तथा धर्मिक पाठ्य-पुस्तकों की रचना करना।

कार्यकारी मंडल।

सभापतिः—प्रो० हीरालाल जैन, एम. ए., अमरावती।
उपसभापतिः—बैरिस्टर जमनाप्रसाद, सब-जज, कटनी, सी. पी.।
प्रधान मंत्री—पं० अजितप्रसाद, एम०ए०, चीफ् जज, जावरा स्टेट।
मंत्रीः—पं० मूलचन्द्र 'वत्सल' साहित्य शास्त्री, दमोह सी० पी०।
उप मंत्रीः—पं० भुवनेन्द्र 'विश्व,' शास्त्री, जबलपुर।
कोषाध्यक्षः—सेठ गुलाबचन्द जैन, जमींदार, दमोह, सी० पी०।
मंत्री-ग्रंथसूची विभागः—पं० महेन्द्रकुमार, न्यायाचार्य, बनारस।

सभासद।

पं० जुगल किशोर, मुख्त्यार, सरसावा।
पं० कैलाशचन्द्र, शास्त्री, बनारस।
पं० चैनसुखदास, न्यायतीर्थ, जयपुर।
पं० अजित कुमार, शास्त्री, मुलतान।
पं० के. भुजबलि, शास्त्री, न्यायाचार्य, आरा।
पं० वंशीधर न्याय तीर्थ, व्याकरणाचार्य, बीना।
पं० पन्नालाल, काव्य तीर्थ, साहित्याचार्य, सागर।
पं० कामताप्रसाद जैन, संपादक 'वीर,' अलीगंज।
पं० हीरालाल, न्यायतीर्थ, साहित्य-रत्न, देहली।
ला० अयोध्याप्रसाद, गोयलीय, देहली।

जिनवाणी के उद्धार और उसके प्रचार का कठिन भार "जैन-साहित्य-सम्मेलन" ने अपने ऊपर लिया है। इसकी तन, मन, धन से सहायता करना जैन-समाज का धर्म है। इसमें सहायता देने से यश और पुण्य के साथ-साथ जैनवाणी के उद्धार का महान् पुण्य लाभ होगा।

सहायक पदः—

संरक्षकः—एकबार एक सौ रुपया देनेवाले सज्जन संरक्षक होंगे। उन्हें सम्मेलन द्वारा प्रकाशित सभी ग्रन्थ जीवन भर मुफ़्त मिलेंगे।

मुख्य सहायकः—एक बार २५) रुपया देनेवाले सज्जन होंगे। उन्हें ५ वर्ष तक सभी ग्रन्थ मुफ्त मिलेंगे।

ग्राहकः—प्रति वर्ष ३) वार्षिक देनेवाले सज्जन होंगे उन्हें एक वर्ष तक सभी ग्रन्थ मुफ्त मिलेंगे।

जो सज्जन किसी ग्रन्थ के उद्धार करने में अथवा प्रकाशन में कुछ सहायता देंगे उनका नाम उस ग्रन्थ में प्रकाशित किया जायगा तथा जो सज्जन किसी एक ग्रन्थ का पूर्ण प्रकाशन करायेंगे उनका नाम तथा चित्र उस ग्रन्थ में प्रकाशित किया जायगा।

निम्न लिखित सज्जनों ने जैन-साहित्य-सम्मेलन के सहायक बन कर इस पुस्तक के प्रकाशन में सहायता पहुँचाई है इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

१००) श्रीमान् सेठ घासीलाल मूलचन्द्रजी, कन्नड़।
३०) „ सेठ भँवरलालजी, राघोगढ़।
२५) „ सेठ शिवप्रसादजी मलैया, सागर।
२५) „ सेठ दमरूलाल दुलीचन्दजी, गोटेगाँव।

२५) श्रीमान् सवाई सिंघई नाथूरामजी मालगुजार, नरसिंहपुर।
२५) „ सिंघई रामभरोसे स्वदेशचन्द्रजी, गोटेगाँव।
२५) „ सेठ मोतीलाल कन्हैयालालजी, कन्नड़।
※ २५) „ सेठ श्रीकृष्णदासजी, औरङ्गाबाद।
११) „ चौधरी कन्हैयालाल हुकमचंदजी, सागर।
११) „ सेठ कुंजीलालजी कठरया, पन्नार।
१०) „ सेठ गनपतलालजी गुरहा, दूकान पन्नार।
१०) „ सेठ लालचन्दजी माणिकचन्दजी पहाड़े, नांदगाँव।
१०) „ सिंघई उदयचंदजी दरबारीलालजी, गोटेगाँव।
१०) श्रीमती चन्द्रबाईजी, सुपुत्री सेठ घासीरामजी, खंडवा।
१०) श्रीमान् ला० जंबूप्रसादजी रईस, नानौता।
१०) „ सिंघई कन्हैयालाल गिरधारीलालजी, कटनी।
※१०) „ सेठ कचरदास चुन्नीलालजी रईस, वाकलीवाल बिल्डिंग, औरंगाबाद।
५) „ सिंघई कुन्दनलालजी, सागर।
५) „ चौधरी गुलामचन्दजी, गोटेगाँव।
५) „ सेठ जीवनलालजी सराफ, गाड़रवाड़ा।
५) „ सेठ घासीराम चुन्नीलालजी, टिमरनी।
५) „ सेठ हीरालाल सितावचन्दजी, खंडवा।

---

३९७)

※ फूल वाली रकमों में घासीलाल मूलचन्द्रजी कन्नड़ से १०) तथा सेठ कचरदासजी चुन्नीलालजी औरंगाबाद से १०) हैदराबादी प्राप्त हुए हैं। शेष द्रव्य अभी प्राप्त नहीं हुआ है।

भवदीय—

मूलचन्द्र 'वत्सल'

मंत्री-जैन साहित्य-सम्मेलन, दमोह सी. पी.